राम के पूर्वजन्मों तक का वर्णन, महर्षि दयानन्द सरस्वती को इस युग का महान निर्माता एवं वेद का उद्धारक तथा उनके पूर्व-जन्म के माता पिता का नाम धाम सब बता देना कम आश्चर्य की बात तो है नहीं। जिस अवस्था में लेट कर शिरःसञ्चालन के साथ स्पष्ट प्रवचन न इनके वश की बात है। यह सब तो स्वाभाविक रूप से इनके लेटने पर हो जाता है और तब गंगा के प्रवाह के समान वाणी अमृत की वर्षा करने लगती है, और इस अमृत वर्षा से उपस्थित जन समूह के मानसिक एवं शारीरिक पाप धुल जाते हैं, हृदय पवित्र और स्वच्छ बन जाता है, तभी तो ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों में दूर २ से हजारों की संख्या में भाई बहिन उपस्थित होते हैं।

ब्रह्मचारी जी के सैकड़ों प्रवचन टेपरिकार्ड में अनुसन्धान समिति के पास सुरक्षित हैं। जैसे २ समिति को जनता का सहयोग प्राप्त होता रहेगा उसी क्रम से समिति इनका प्रकाशन करने के लिये सदा तत्पर रहेगी। समिति अनेक विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किये हुए है कि वे इस गूढ़ विषय पर अपनी सम्मति प्रदान करते रहें जिससे कि हमें अनुसन्धान कार्य में सहयोग मिलता रहे।

ब्रह्मचारी जी का संक्षिप्त जीवन परिचय प्रथम प्रवचन पुस्तक के सोलह पृष्ठों में दिया गया है तथा अनेक विद्वानों, योगियों, साधकों की सम्मति भी उस पुस्तक में है जो बन्धु उसे पढ़ना चाहें वे पहली पुस्तक को पढ़कर जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अन्त में मैं उन सभी महानुभावों का धन्यवाद करता हूं जिन्होंने पुस्तक के सम्पादन, लेखन, प्रकाशन तथा अन्य अनेक सम्मतियों द्वारा सहयोग प्रदान किया है। आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वे समिति को सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

आपका :—

देवप्रकाश शर्मा संयोजक

मानव-उत्थान के कुछ वैदिक-विचार

तथा

कुछ ऐतिहासिक-सत्य

अवान्तर-विषय :—

(१) वेद ज्ञान तथा प्रकाश की नित्यता। (२) मानव को दूरदर्शी पूर्ण सत्य-ज्ञान का उपासक होना चाहिये। (३) सांसारिक जीव का मुक्तात्मा में रूपान्तर होना। ४) मुक्त होने की विधि। (५) मानव जीवन में समय-विभाग एवं नम्रता की महत्ता। (६) मानव पद के लिये ज्ञान, नम्रता और धर्म की आवश्यकता। (७) धार्मिक बनने का सबसे बड़ा साधन नम्रता। (८) दान देकर लेना कर्त्तव्य नहीं। (९) दूसरे की भावनाओं को आदर देना। (१०) सतोगुण के प्रसार के लिये तमोगुणी का भी आदर करो। (११) आत्मज्ञानी बनने के लिये नम्रता तथा कर्त्तव्यपरायणता। (१२) गायत्री जप की अनिवार्यता। (१३) वर्त्तमान प्रकाश की अवधि। (१४) संसार की अनित्यता। (१५) श्री ब्रह्मचारी जी के जीवन की अनित्यता। (१६) सत्य को स्वीकार कर लो। (१७) गंगानन्दी का कन्या रूप धारण करना असत्य है। (१८) जीवात्मा ही गंगा है। (१९) गंगा का आलंकारिक स्वरूप। (२०) गंगा का वास्तविक रूप। (२१) समझते हुए भी महानन्द जी के प्रश्न का कारण। (२२) महर्षि व्यास की उत्पत्ति का पौराणिक आख्यान। (२३) महर्षि व्यास के जन्म का सत्य इतिहास। (२४) योगीजन भी परमात्मा के नियम को नहीं तोड़ सकते।

—सम्पादक

❀ ओ३म् ❀

ता० ३ अप्रैल सन् १९६२ ई०
मङ्गलवार
स्थान–लाजपतनगर, नई दिल्ली।

(१) वेद-ज्ञान तथा प्रकाश की नित्यताः—

देखो मुनिवरो ! अभी अभी हमारा पर्यायण (वेद-पाठ) समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष वेदों का मनोहर गान गा रहे थे। आज का वेद पाठ बड़ा ही सुन्दर था। आज हमारी इच्छा हो रही थी कि सारे समय में हम वेद का गान ही गाते रहें। परन्तु महानन्द जी के अनेक अनुरोध और प्रार्थनाओं के अनुकूल व्याख्यान का रूप प्रदान कर रहे हैं।

आज के वेदपाठ में बड़ी सुन्दर वार्ता का उपदेश किया गया है। समय के अभाव होने के नाते और आपत्ति काल होने के नाते वेद–पाठ का प्रसार पूर्व–काल के अनुसार कर नहीं पाते। ऐसा भी प्रतीत होता है कि यह समय भी नहीं रहेगा।

उस महान् विधाता तथा दया के सागर महान् आत्मा ने हमें कैसा अनुपम ज्ञान दिया है। हमें इससे पूर्ण रूप से सन्तुष्टि है। एक समय आयगा कि यह प्रकाश भी नहीं रहेगा।

आज मानव को यह विचार लेना चाहिये कि इस प्रकाश के अन्त होने पर प्रकाश की सदा के लिए समाप्ति नहीं होती।

और प्रकाश का रूपान्तर हुआ करता है। वैसे ही मुनिवरो ! वेद-वाणी के भी विभिन्न रूपान्तर होते हैं। यहां इस समय भी रूपान्तर के साथ ही वेदपाठ किया जा सका है। मुनिवरो ! एक समय वह आयगा कि जब यह वेदपाठ का रूपान्तर और अधिक सूक्ष्म हो जायगा। रूपान्तर ही रूपान्तर रह जाएगा।

मुनिवरो ! आज मानव को विचारना चाहिये कि यह जो प्रकाशमय सृष्टि का चक्र चल रहा है, इसमें प्रकाश वरुण और शीतलता आदि सभी कुछ हैं। हे मानव ! यह न मान बैठ कि यह प्रकाश ऐसे ही चलता रहेगा। नहीं, नहीं एक समय वह आएगा कि यह दृष्टि से भी दूर का पदार्थ बन जायगा। यह कौनसा पदार्थ बन जाएगा ?

(२) मानव को दूरदर्शी पूर्ण सत्य ज्ञान का उपासक होना चाहियेः—

मुनिवरो ! देखो, परमात्मा ने जो प्रकाशमयी हरी-भरी सृष्टि की रचना की है यह भी समय आने पर नहीं रहेगी। मानव को दूरदर्शी होना चाहिये। मानव को विचारना चाहिये कि जब अपने जीवन का और इस सृष्टि का रूपान्तर हो जाएगा तब हम क्या कर सकेंगे ? इसलिये रूपान्तर होने से पूर्व हम उस ज्ञान को प्राप्त कर लें, उस महत्त्व दायक पदार्थों को प्राप्त कर लें कि हमारे समक्ष वह (भौतिक) भावी परिवतन महत्त्वहीन हो जाए ! वह ऐसी कौनसी महत्ता है ?

(३) सांसारिक जीव का मुक्तात्मा में रूपान्तर होनाः—

मुनिवरो ! जब यह आत्मा इस शरीर रूपी-क्षेत्र में आ करके, उच्च कर्म करता हुआ, प्रकाश (ज्ञान) का संचय करता हुआ कर्मों का फल भोगकर समाप्त कर लेता है तब यह आत्मा

परमानन्द को प्राप्त हो जाता है। मुनिवरो ! उस समय आत्मा का भौतिक पदार्थों से अलग होकर परम पिता की गोद में पहुंच कर परमानन्द लाभ करने वाले के रूप में रूपान्तर हो जाता है। यह रूपान्तर तुम्हारी स्थूल भौतिक दृष्टि से तुम्हें प्रतीत नहीं हो पाता।

(४) मुक्त होने की विधि :—

यह प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ? इसका क्या कारण है ? बेटा हमने कई कालों में कहा है और कई स्थानों में कहा है कि यह आत्मा परमात्मा के समक्ष जब यत्न करके उस परमात्मा को जान करके इस स्वर्गीय सृष्टि का जानने वाला बन जाता है, उस समय जीव परमात्मा का जानने वाला बनकर परमात्मा को पा लेता है। उस परमात्मा को बिना जाने यह कुछ भी नहीं जान पाता। यह आदेश कई बार उच्चारण कर चुके हैं। आज इस विषय के व्याख्यान का समय तो नहीं था।

आज तो प्रभु प्रशंसा के साथ बड़ा मधुर आदेश चल रहा था। आज कल्याण करने वाले शिव की याचना कर रहे थे। वह शिव संसार की रचना करके हर पदार्थ को जीव के लिये देता है। वह संसार की रचना और प्रलय करता है। वह विधाता सबका कल्याणकारी है।

(५) मानव जीवन में समय विभाग एवं नम्रता की महत्ता:—

कल भी हम व्याख्यान दे रहे थे कि प्रभु को जानो ! प्रभु को कैसे जानें ? देखो मानव को अपने जीवन के विभाग बना लेने चाहियें। क्योंकि भौतिक दृष्टि से भी विचार करें तो भी जीवन के समय का विभाजन होना आवश्यक है।

वेद-पाठ में अनेक स्थलों में 'नमः' शब्द का पाठ आया है।

विचार कर देखना चाहिये कि 'नमः' की व्याख्या क्या है ? 'नमः' किसके लिये किया जाता है ? नमः क्या पदार्थ है ।

मुनिवरो ! सबसे पहिले मानव में अपने धर्म-पालन में नम्रता होनी चाहिये । अपने जीवन में नम्रता होनी चाहिये । अपने धर्म पर पूरी-पूरी आस्था (विश्वास) होनी चाहिये । ऐसे मानव में नम्रता आती जाएगी । नहीं तो मानव में नम्रता नहीं आ सकेगी। शुद्ध ज्ञान के साथ नम्रता आएगी । ज्ञान न होगा तो नम्रता कभी भी न आ सकेगी । हृदय में नम्रता का अंकुर पैदा होने पर जीवन मधुर बन जाता है । उस समय उज्ज्वल मनोहरता के कारण जीवन सुन्दर बन जाता है ।

मुनिवरो ! देखो, एक समय महाराजा राम में ऐसी नम्रता ने स्थान बनाया कि वे माता पिता के आदेश को पाकर वन को गये । उनमें धर्म की आस्था (विश्वास) थी । वे धर्म के मर्म को जानते थे ।

एक समय जब वे लक्ष्मण के साथ विचर रहे थे तब 'निषाद' उनसे मिलने के लिये आए । निषाद ने रामचन्द्र जी से प्रश्न किया कि महाराज ! आपका तो राजतिलक होने जा रहा था, आपने वन में जाना क्यों स्वीकार कर लिया ? यह आपने क्या किया ?

तब उस समय महान् योगी महाराजा राम ने कहा था हे निषाद ! यह मेरा धर्म है, यह मेरा कर्त्तव्य है कि मेरे माता पिता ने जो आज्ञा दी है मुझको उसका पालन करना चाहिये । आज भी उन माता पिता के आदेशों का पालन कर रहा हूं । यह मेरा धर्म है ।

(६) मानव पद पाने के लिये ज्ञान, नम्रता और धर्म की आवश्यकताः—

मुनिवरो ! ऐसी अवस्था किस काल में उत्पन्न होती है जब मानव इस प्रकार राज्य तक का त्याग कर बैठता है ? ऐसी अवस्था तब ही आती है कि जब मानव में ज्ञान, नम्रता और धर्म में आस्था होती है ? धर्म में आस्था न होने पर मानव कभी भी मानवता पर नहीं पहुँच सकता। मानवता के न होने पर जीवन अधूरा ही रहेगा।

(७) धार्मिक बनने का सबसे बड़ा साधन नम्रताः—

मुनिवरो ! देखो, एक समय महान् योगी रामचन्द्र जी से वन में शबरी मिलने के लिए आई। शबरी ने महाराजा राम से प्रश्न किया कि महाराज ! धर्म की क्या महत्ता है ? और धर्म क्या पदार्थ है ?

मुनिवरो ! उस समय महाराजा राम ने शबरी को केवल एक ही उपदेश दिया था कि 'शबरी ! तेरा और मेरा कर्त्तव्य एक माना गया है। अर्थात् हमारे हृदय में धर्म की आस्था हो, अन्तःकरण और वाणी में नम्रता हो. यही धर्म का सबसे बड़ा लक्ष्य माना गया है। मानव चाहे कितना ही वेदों का परिपक्व पंडित हो, नम्रता के अभाव में सब व्यर्थ है। इसलिये नम्रता मानव के धार्मिक बनने का सबसे बड़ा साधन है।

महाराजा राम ने लक्ष्मण तथा हनुमान जी को ऐसा ही उपदेश दिया था। उन्होंने कहा था कि भाई ! देखो, जब तक धर्म की आस्था के साथ अन्तःकरण को छूने वाले कार्य पूर्ण नम्रता के साथ नहीं करेंगे तब तक हमारे धर्म का कोई महत्त्व नहीं है। हम धर्म को केवल वाणी से मानें परन्तु हमारा हृदय अधूरा बना बैठा हो, हमारे हृदय में वह महत्त्व नहीं आए तो

हमारी मानवता व्यर्थ है। ऐसी मानवता का कोई महत्त्व नहीं।

मुनिवरो ! आज के हमारे आदेश का अभिप्राय यही है कि मानव नम्रतापूर्वक धर्म के प्रति ऊंची आस्था रख कर धर्म के लिए कर्त्तव्यपालन में दृढ़ हो जाए। उस समय मानव में एक विशेष महत्त्वपूर्ण ज्ञान का प्रकाश होता है। ज्ञान के प्रकाश के होने पर मानव के मन में धर्म के लिए आस्था और दृढ़ हो जाती है। उस समय मानव में धर्म की विवेक बुद्धि का प्रकाश हो जाता है। अर्थात् धर्म का बड़ा विवेकी बन जाता है।

(८) दान देकर लेना कर्त्तव्य नहीं है:—

मुनिवरो ! महाराजा राम बहुत बड़े राजनीतिज्ञ और धर्म नीतिज्ञ थे। जिस समय महाराजा राम ने रावण को समाप्त कर दिया था, अर्थात् उसके प्रभुत्व को समाप्त कर दिया था, उस समय महाराजा राम के समक्ष विभीषण ने उपस्थित होकर नाना प्रकार के द्रव्यों को उपहार के रूप में प्रस्तुव किया। उस समय महाराजा राम ने अपने मन्त्रियों से कहा था कि हे मन्त्रियो ! विभीषण के द्वारा दिये गए महान् द्रव्यों के उपहारों को स्वीकार करूं कि न करूं ?

मुनिवरो ! उससमय मन्त्रियों ने कहा कि हे राजन् ! हे राम! जो आपने दान कर दिया, वह तो दान ही है। दान दी हुई सम्पत्ति में से ही उपहार रूप में वापिस लेना आपका कर्त्तव्य नहीं है। ऐसा महाराजा हनुमान आदि मन्त्रियों ने राम से कहा।

(९) दूसरे की भावनाओं को आदर देना:—

अहा ! मुनिवरो ! कैसा सुन्दर आदेश। इसके विपरीत आज मानव कहां पहुंच रहा है ? आज का मानव जब तक एक

दूसरे का आदर नहीं करेगा, एक दूसरे के अन्तःकरण की भावनाओं और सत्ता को आदर नहीं देगा, नहीं जानेगा, तब तक धर्म का कोई महत्त्व नहीं। जब तक मानव की दृष्टि में धर्म का अस्तित्व नहीं तब तक मानव एक दूसरे का आदर कदापि नहीं करेगा।

मुनिवरो! आज हमें आदर करना चाहिए। किसका आदर करें और किसका आदर न करें?

(१०) सतोगुणी के प्रसार के लिये तमोगुणी का भी आदर करो:—

मुनिवरो! इस विषय में तो हमारा वेद आदेश देता है कि संसार में सब ही का आदर करो। ऐसी दशा में प्रश्न होता है कि क्या तमोगुणी मनुष्य का भी आदर करें? इस विषय में वेद का मत है कि तमोगुणी व्यक्ति का भी आदर करो। यदि तमोगुणी का आदर नहीं करोगे तो उस तमोगुणी व्यक्ति में सतोगुण तो कदापि आ ही नहीं सकेगा।

मुनिवरो! देखो मानव को आस्तिक बनाने के लिए, उसको तमोगुणी से सतोगुणी बनाने के लिए उसका आदर करना अर्थात् उससे आदरपूर्वक व्यवहार करना अत्यावश्यक है। क्योंकि सत्कारपूर्वक व्यवहार से ही उसके अन्तःकरण में सतोगुण के प्रति और आस्तिकता के प्रति प्रेम उत्पन्न हो सकेगा, अन्यथा नहीं। तमोगुणी व्यक्ति को भी हमारे मधुर व्यवहार से उसके अन्तःकरण में ऐसी प्रेरणा मिले या उत्पन्न हो कि "तुझको भी लोगों से ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि जैसा तेरे साथ किया जा रहा है।" इसके विपरीत यदि तमोगुणी व्यक्ति से हम तमोगुण वाला ही व्यवहार करें तो उस तमोगुणी मानव में

या उसके अन्तःकरण में सात जन्मों तक भी सतोगुण का अंकुर उत्पन्न न हो सकेगा। इसलिए वेद कहता है वेद का आदेश है कि हे मानव ! तू सबका नम्रता के साथ सबका आदर कर।

परन्तु इसके साथ वेद ने यह भी आदेश दिया है कि "जब तक मनुष्य समय के अनुकूल व्यवहार नहीं करेगा तब तक मानव का कोई महत्त्व नहीं है।"

इस पर आज का मानव कहेगा कि वेद यह दो प्रकार की वार्त्ताएँ क्यों कह रहा है ?

मुनिवरो ! देखो, हमारे यहां दो प्रकार की आस्थाएं या विषय हैं। दो प्रकार की नीतिएं हैं। एक आध्यात्मिक धर्म-नीति है तो दूसरी राजनीति है।

(११) आत्मज्ञानी बनने के लिये नम्रता तथा कर्त्तव्य परायणताः—

मुनिवरो ! हमको तो धर्म के आध्यात्मिक विषय पर जाना चाहिये। क्योंकि यदि हम आस्तिकता को, सतोगुण को प्रसारित करना चाहते हैं तो हमें सबकी आत्माओं के स्वभाव को ध्यान में रखकर सभी के साथ अर्थात् तमोगुणी के साथ भी नम्रता और आदर के साथ व्यवहार करना आवश्यक है। तभी हम अपनी आत्माओं को उच्च बना सकेंगे। तभी हम आध्यात्मिक विज्ञानी बन सकेंगे। अन्यथा हम आध्यात्मिक विज्ञान को कदापि तथा किसी प्रकार भी नहीं पा सकेंगे।

इस पर आज का मानव कहेगा कि वह जो महाराजा कृष्ण ने महाभारत युद्ध के आरम्भ में अर्जुन को कहा था कि "हे अर्जुन आज कठिन समय उपस्थित है। इस समय तेरा परम कर्त्तव्य है कि तू संग्राम करके शत्रुओं का नाश कर। समय के

अनुकूल तेरा यही धर्म है।" इत्यादि।

(१२) गायत्री जप की अनिवार्यता--

मुनिवरो ! धर्म में पूरी २ आस्था रखते हुए कभी भी मनुष्य को अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए।

मुनिवरो ! धर्म शील मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन को देखो। जब लंका में राम-रावण युद्ध चल रहा था तब भी राम नित्य प्रातः एक सहस्र गायत्री का जप करके ही युद्ध स्थल में उतरा करते थे। राम जब तक एक सहस्र गायत्री का जप समाप्त नहीं कर लेते थे, तब तक वे संग्राम भूमि में उपस्थित नहीं होते थे। महाराजा राम के चरित्र की तथा इतिहास की इस बहुत सुन्दर वार्त्ता का कथन महर्षि वाल्मीकि ने हमारे समक्ष किया है।

मुनिवरो ! महर्षि वाल्मीकि द्वारा वर्णित महाराजा रामचन्द्र जी का इतिहास तो एक महान् वन के तुल्य है। इस महान् चरित्र का वर्णन तो किसी अन्य स्थान एवं अन्य समय पर करेंगे।

(१३) वर्त्तमान प्रकाश की अवधिः--

मुनिवरो ! हमारे समक्ष विचार करने के लिए प्रश्न उपस्थित है कि जो आज हमें प्रकाश मिल रहा है, वह प्रकाश कब तक रहेगा ?

इसका उत्तर यह है कि जब तक प्रकाश करने वाले पदार्थ प्रकाशक वस्तु में रहेंगे। जैसे मुनिवरो ! प्रकाश देने वाले सूर्य में प्रकाशदाता सविता सत्ता है यही सविता सत्ता प्रकाश देने वाला पदार्थ है जब यह सविता सत्ता परमात्मा में रमण कर जायगी तब सूर्य का प्रकाश समाप्त हो जाएगा।

इसी प्रकार से प्रकाश दाता आत्मा जब तक अंतःकरण के साथ है तभी तक अन्तःकरण में प्रकाश है। और तभी तक अन्तःकरण में संस्कार जम रहे हैं। अर्थात् संचित होकर वर्त्तमान रहते हैं। मुनिवरो! आत्मा के सहयोग तक ही हमारे प्राण भी कार्य कर रहे हैं। और हमारे चक्षु भी तभी तक कार्य कर रहे हैं। अर्थात् जब यह प्रकाश वाला आत्मा हमारे शरीर से अलग हो जायगा उस समय ये सब ही निकम्मे हो जायेंगे और हो जाते हैं।

मुनिवरो! आज के हमारे व्याख्यान का अभिप्राय यह है मानव को अपनी वास्तविक मानवता पर चलना चाहिए। यह कितना सुन्दर एवं प्रबल मानव के लिए परमात्मा का आदेश है। परमात्मा का मानवों को वेद में उपदेश है कि रे मानवो! तुम एक दूसरे से प्रीति करो। परस्पर प्रेम पूर्वक व्यवहार करो। भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान को जानकर अपने जीवन को उच्च बनाओ। स्वयं प्रकाशवान् होकर अपने जीवन को उच्च बनाकर प्रकाश वाले कर्म करो।

(१४) संसार की अनित्यताः--

मुनिवरो! आज का मानव तो विचार रहा है कि अभी तो प्रकाश हो रहा है। परमात्मा ने कर्म के लिए बहुत समय दिया है। परन्तु रे मानव! ऐसा मत सोच। पता नहीं मानव का यह जीवन कब समाप्त हो जाए। इस शरीर को त्यागकर आत्मा कब कूच कर दे। इसलिए रे मानव? कल पर काम को मत छोड़। यह मत सोच हम कल कर लेंगे। अहा! इस कल ही कल में मानव जीवन समाप्त हो जायगा। रे मानव! फिर किसके प्रकाश में कर्म करेगा?

मुनिवरो ! आज मानव को विचारना चाहिये कि परमात्मा ने हमें प्रकाश के पाने का अवसर दिया है। उस प्रकाश में हमें, क्या कर्म करने चाहिये ? यदि हम कर्त्तव्य कर्म नहीं करेंगे तो हमारा जीवन व्यर्थ हो जायगा। अहा ! मुनिवरो ! भगवान् की ओर से जीव के लिये कितना मधुर आदेश है। इस सुन्दर एवं संसार में धर्म की तथा राजनीति की मर्यादा आस्था बांध करके परलोक सिधारें।

(१५) श्री ब्रह्मचारी जी के जीवन की अनित्यताः--

बेटा ! इसलिये आज हमारा भी आदेश है कि हमसे भी जितना लाभ प्राप्त कर सकते हो उतना लाभ प्राप्त कर लो। क्योंकि महाराजा राम और महाराजा कृष्ण आदि की तरह हम सबको भी इस संसार से एक न एक दिन चल ही देना है। हमारा भी समय निकट आ रहा है। प्रलयकाल में जैसे सूर्य समाप्त हो जाता है वैसे ही हमारा भी अन्त हो जाना है। इस लिये बेटा ! जितने तुम्हारे प्रश्न हों, जितनी तुम्हारी जिज्ञासाएं हों सब पूर्ण करो। जीवन का समय सूक्ष्म रह गया है। उसी सूक्ष्म समय में समाप्त हो जायगा। यह आत्मा अपने लोक को चला जायगा। यह आत्मा उस स्थान पर पहुँच जाएगा कि जहां से यह आया था।

धन्य हो भगवान् !

तो मुनिवरो ! अभी अभी हम महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर अपनी शक्ति के अनुसार देंगे।

गुरुजी ! अभी अभी आपने कहा था कि जैसे महाराजा राम और महाराजा कृष्ण आदि समाप्त हो गये वैसे हम सब भी समाप्त हो जायेंगे ? तो क्या आप भी और हम भी समाप्त हो

जायेंगे ? हि हि हि ····· हास्य ।

बेटा ! तुम तो समाप्त हुए बैठे हो । हि हि हि हास्य । तुम्हारी वार्ता ही क्या है । हि हि हि ·· हास्य । तुम्हारा तो कोई उच्चारण करना ही नहीं है । हि हि हि··· हास्य ।

अच्छा भगवान् ! तो गुरुजी ! हमें आपने कल द्वापर के समय का कुछ आदेश दिया और महाराजा गंगशील ब्रह्मचारी (देवव्रत भीष्म पितामह) के विषय में कहा था ।

परन्तु आज हम अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा जब लाक्षागृह पर विचरण कर रहे थे तब हमने सुना था कि गंगशील (भीष्म) की तो माता वह गंगा नदी थी कि जो आज भी पर्वतों से निकल कर मृत्युलोक (पृथ्वी) पर बह रही है । और इसी गंगा नदी का महाराजा शन्तनु के साथ विवाह संस्कार हुआ था । इसने देव कन्या स्वरूप धारण किया था । संस्कार के समय महाराजा शन्तनु से यह वचन हुआ था कि जो भी मेरे पुत्र होगा उसका आहारमैं स्वयं कर जाया करूंगी ।

अच्छा, दूसरा प्रश्न यह है कि एक समय महाराजा इन्द्र ने गणों और आठ गन्धर्वों को शाप दे दिया था । वे ही आठ गन्धर्व थे कि जो माता गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । परन्तु आपने तो इस सबकी रूप-रेखा ही बदल दी है । आपकी रूप-रेखा समझ में नहीं आ रही है । क्योंकि आधुनिक महाभारत में भी हमारे कथनानुसार परम्परा अंकित है अब हम यह जानना चाहते हैं कि हम आपके व्याख्यानों को स्वीकार करें या आधुनिक काल के महाभारत की वार्त्ताओं को स्वीकार करें ।

(१६) सत्य को स्वीकार कर लो:—

हूँ, महानन्दजी ! इसमें तो कोई उलझन की वार्त्ता नहीं है। क्योंकि जो तुम्हें सत्य प्रतीत होता हो उसी को स्वीकार कर लो। हमारी तो इसमें कोई हानि नहीं है।

परन्तु बेटा ! तुम्हारे उच्चारण के अनुसार हम एक वार्त्ता जानना चाहते हैं कि तुमने एक बार कहा था कि—ब्रह्मा जी की कृपा से यह गंगा पहले ब्रह्मलोक में बहती थी। उस समय गन्धर्वों को शाप दे दिया गया था। तब इन गन्धर्वों ने ब्रह्मा की पुत्री गंगा से याचना की थी कि हे माता ! आप मृत्युलोक में चलें। क्योंकि वहाँ हम तेरे गर्भ से जन्म-धारण करेंगे। तुम स्वयं आहार करके हमारा उद्धार करते रहना। ऐसा ही तो तुम्हारा कथन था।

हां ! हां।

अच्छा बेटा। इसका संक्षेप में उत्तर यह है कि परमात्मा की कृपा से पर्वतों से गंगा झरने के रूप में निकल कर अन्य नदी नदों आदि से मिलकर वैश्यों तथा कृषकों की खेती को जीवन दान करती हुई, कीट पतंगों, पशु-पक्षियों एवं मानवों आदि को अपने अमृतरूपी जल से सन्तुष्ट करती हुई जीवन-दान करती हुई बहती है। आस्तिक इस अनुपम रचना के द्वारा परमात्मा के चिन्तन की ओर लग जाता है, परमात्मा में रमने लगता है।

(१७) गंगा नदी का कन्या का रूप धारण करना असत्य है :—

बेटा ! मानव का एक सिद्धान्त होना चाहिये कि "सत्य को सत्य मानने में या उसके उच्चारण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।" बेटा ! यह गंगा तो जल की बह रही है। यह

तो सर्वथा जड़ है। चेतनाशून्य है। ज्ञान शून्य है। जल कहीं कन्या रूप में आता है? क्या यह हो सकता है? बेटा! यह तो हो सकता है कि कोई कन्या गंगा नदी में किसी स्थान पर गिर कर बह गई हो, उसको किसी ने निकाल कर गंगा नाम रख दिया हो।

बेटा! परन्तु जल वाली गंगा नदी देवकन्या बन गई हो, हम तुम्हारे ऐसे वाक्यों को कभी भी मानने को तैय्यार नहीं। क्योंकि ये परमात्मा की बनाई हुई प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध हैं।

यह भी हो सकता है कि गंगा नामक देव कन्या कभी गंगा में गिर गई हो। उसकी राजा शन्तनु ने रक्षा कर दी हो। परन्तु तुम्हारी कल्पना को हम कभी नहीं मानेंगे। क्योंकि यह प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है।

बेटा! तुमने जो यह कहा कि यह ब्रह्मा की पुत्री है। यह वाक्य तो सत्य है। क्योंकि जो जहाँ से उत्पन्न होती हैं वह उसी की पुत्री होती है। परन्तु आज के मानव ने इस वार्त्ता को अच्छी प्रकार से विचारा नहीं और न अच्छी प्रकार से समझा ही। मानव अपने अज्ञान के कारण कुछ का कुछ मान बैठा है। कुछ का कुछ समझ बैठा है।

(१८) जीवात्मा ही गंगा है :—

इसका अभिप्राय यह है कि बेटा! हमारे शरीर में नौ द्वार हैं वे ही गन्धर्व हैं। मुनिवरो! मूलाधारचक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक (इडा, पिंगला, सुषुम्णा, नाड़िएं), गंगा, यमुना और सरस्वती ये तीन नदियां बह रही हैं। बेटा! जिनको तुम आकाश गंगा, मृत्युलोक की गंगा और पाताल गंगा कहते हो, तीनों गंगाएं

हमारे इस स्वर्गीय शरीर में हैं। गंगा ही नौ द्वारों में रमरण कर रही है। इनको स्वच्छ करती रहती है। ऐसी कौन सी गंगा है। जो ब्रह्मा की पुत्री है ?

मुनिवरो ! देखो, गंगा नाम आत्मा का है। क्योंकि इन नौ द्वारों वाले शरीर को पवित्र कर रहा है। बेटा ! देखो, यदि यह महान् आत्मा इस नौ द्वारों वाले शरीर में न होता तो इन नौ द्वारों का कुछ भी न बन सकता था। इसी के द्वारा शरीर पवित्र होता है।

जैसे लौकिक गंगा में स्नान करके स्वच्छ हो जाते हैं, अपने शरीरों को पवित्र कर लेते हैं। उसी प्रकार से ब्रह्मा की पुत्री रूप गंगा के द्वारा यह नौ द्वारों का शरीर पवित्र होता रहता है। परमात्मा का तथा आत्मा का सम्बन्ध पिता-पुत्र का है। बेटा ! यह ध्यान देने वाला विषय है कि जब आत्मा इस शरीर को त्याग कर चल देता है तब इस निष्प्राण शरीर को मानव अपवित्र मानते हैं। इसमें आत्मा के निवास तक ही इसको पवित्र माना जाता है। अतः पवित्र करने वाली गंगा आत्मा ही है।

(१६) गंगा का आलंकारिक स्वरूप :—

बेटा ! देखो, गंगा का एक आध्यात्मिक योगाभ्यासियों का आलंकारिक वर्णन भी है। जिसको मानव ने समझा नहीं।

इस मानव शरीर में तीन नाडिएं इडा, पिंगला, सुषुम्णा या गंगा, यमुना, सरस्वती के नाम के प्रसिद्ध हैं। जब मानव योगाभ्यासी बनकर मूलाधार में ध्यान करके रमण करता है तब उसको मृत्यु-लोक की गंगा का ज्ञान होता है। इसके पश्चात् जब आत्मा नाभिचक्र में और हृदयचक्र में ध्यानावस्था में पहुंचता

है तब उसे आकाश गंगा का ज्ञान होता है। जब योगाभ्यासी आत्मा समाधि अवस्था में घ्राणेन्द्रिय-चक्र में ध्यान लगाता है तब वह त्रिवेणी में पहुँच जाता है, या त्रिवेणी का साक्षात्कार करता है।

बेटा! इससे आगे चलकर आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है तब उस योगी आत्मा को ब्रह्मलोक की गंगा का ज्ञान होता है।

परन्तु मानव ने इस रूप रेखा को ठीक प्रकार से जाना तो है नहीं। इसलिए मानव स्थूल अर्थों को कल्पना द्वारा स्थापित करके भटक रहा है। भौतिक नदी गंगा को ही आज का मानव मुक्ति का साधन अपनी अज्ञानता से समझ बैठा है। इस गंगा से तो केवल भौतिक शरीर ही स्वच्छ किया जा सकता है या प्यासे को उसके स्वच्छ जल से सन्तुष्ट किया जा सकता है।

मानव का अन्तःकरण तो ज्ञान पूर्वक कर्त्तव्य कर्म करने से ही पवित्र होगा।

बेटा! अब रही बात कि राजा शन्तनु के समक्ष यह भौतिक नदी गंगा देवकन्या का शरीर धारण करके प्रस्तुत हो गई। तो बेटा! यह वार्त्ता तो किसी अज्ञानियों की समाज में कहना। वहाँ तुम्हारी वार्त्ता स्वीकार कर लेंगे। इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं। बेटा! परन्तु यहाँ तो तुम्हारी यह वार्ता चलेगी नहीं। ही ही ही···हास्य।

धन्य हो भगवन्।

(२०) गंगा माता का वास्तविक रूपः—

मुनिवरो! हमने तो द्वापर काल में यह देखा था कि राजा गंगेश्वर की गंगा नाम की पुत्री थी। इस गंगा से महाराजा

शन्तनु का विवाह संस्कार हुआ था। इसके सात पुत्र उत्पन्न होकर समाप्त हो गए थे। इसके पश्चात् इनके गंगशील नाम का आठवां पुत्र उत्पन्न हुआ। यह दीर्घायु हुआ। इसके समय समय पर ब्रह्मचारी पर्जन्य, कौडिली ब्रह्मचारी, देवव्रत और भीष्म पितामह तथा गांगेय आदि नाम प्रसिद्ध हुए।

गुरुजी ! इस विषय में तो हमारे बहुत से प्रश्न समाधान के लिए शेष हैं।

हां ! तो बेटा ! समय मिलेगा तो उनके उत्तर देते रहेंगे।

गुरुजी ! जब इसके पश्चात् यह गंगा समाप्त हो गई तो इन महाराजा शन्तनु का संस्कार मच्छोदरी (मत्स्योदरी) के साथ हुआ।

हां हां

अच्छा तो गुरुजी ! तो यह मच्छोदरी किसकी पुत्री थी। ही ही ही......हास्य। बेटा ! किसकी उच्चारण करें ?

महानन्दजी ! महर्षि व्यास जी ने तो इसके विषय में लिखा है कि यह नौका चलाने वाले मल्लाह की कन्या थी।

अच्छा भगवन् तो यह कन्या उस मल्लाह के यहां कहां से आई ?

बेटा ! इस कन्या ने उस मल्लाह के गृह में जन्म लिया था।

अच्छा तो गुरुजी ! इस विषय में तो हमने बहुत ही अनोखी वार्त्ता सुनी है।

वह क्या ?

हमने यह सुना है कि महर्षि पारा की यह पुत्री थी।

हूँ ?

महर्षि पारा का ब्रह्मचर्य मछली के गर्भ में चला गया था। और उस मछली से ही इस मच्छोदरी का जन्म हुआ। ही ही ही.....हास्य।

तो महानन्द जी बेटा! तुम तो तुकबन्दी लगा रहे हो कि जिसका नाम मच्छोदरी हो तो उसने मछली से जन्म लिया है। ये मूर्खों वाले प्रश्न कहां से ले आए? हमारी समझ में तुम्हारे ये प्रश्न नहीं आ रहे हैं। महानन्द जी! तुम तो सब कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं जानते। ही ही ही··· ··· हास्य।

(२१) समझते हुए भी महानन्दजी के प्रश्न करने का कारण :—

गुरुजी क्या करें! ये हमारे और तुम्हारे वाक्य मृत-मण्डल में जा रहे हैं। और हमारे व्याख्यानों को सभी पा रहे हैं। इसमें कोई भ्रान्ति नहीं। भगवन्! आपसे प्रश्न करना हमारा कर्त्तव्य है। यदि आपसे ही प्रश्न नहीं करेंगे तो किसके समक्ष जाकर प्रश्न करेंगे?

हूं तो क्या सुना बेटा!

(२२) महर्षि व्यास की उत्पत्ति का पौराणिक आख्यान:—

तो गुरुजी इसके विषय में ऐसा सुना है कि जब महर्षि पारा मुनि को विवेक हुआ।

हूं।

और अपनी धर्मपत्नी 'उच्चाङ्गना' से कहा कि हे धर्मदेवी! मुझे आज्ञा हो। मैं इस समय मार्ग में तपस्या करने के लिए जा रहा हूँ। उस समय महाराजा शन्तनु भी वहीं विराजमान थे। धर्मदेवी ने एक वाक्य कहा कि भगवन्! आप जा तो रहे

हैं, परन्तु यदि मुझे पुत्र की इच्छा हुई तो मुझे पुत्र को तो अवश्य उत्पन्न करना है।

मुनिवरो ! तो उस समय महर्षि पारा मुनि ने यह कहा कि तुम कागा को मेरे समक्ष नियुक्त कर देना। मैं उनको अपनी सन्मन्ता धारण करूंगा। ऐसा कह कर पारा मुनि प्रस्थान कर गये। वन में जाकर अखंड तपस्या करने लगे। इसके पश्चात् उनकी धर्मपत्नी में पुत्र की इच्छा से काम शक्ति उत्पन्न हुई। तब उन्होंने उस समय कागा नामक दूत को अपने सन्देश के साथ महर्षि पारा के पास भेजा। उस समय पारा मुनि ने अपनी गुप्त इन्द्रिय को मन्थन करके अपने ब्रह्मचर्य को किसी यन्त्र में स्थापित करके कागा को दे दिया। कागा वहां से लेकर जब गंगा के स्थान पर पहुंचे वहां बहुत से व्यक्ति अपने-अपने वाक्य उच्चारण कर रहे थे। वहां कागा को उनके वाक्यों को सुनने की इच्छा हुई। ऐसी परिस्थिति कुछ असावधानी के कारण हुई कि वह यन्त्र गंगा में गिर कर मछली के मुखारविन्द में चला गया। तो देखो, महर्षि पारा मुनि का महान् ब्रह्मचर्य था। वह व्यर्थ नहीं जाता। तब उस मछली के गर्भस्थापन हो गया। उस मछली को किसी मछली पकड़ने वाले ने पकड़ लिया। उस मछली-मार ने उस मछली को पकड़ कर उसके दो भाग कर दिये। मछली के गर्भ में कन्या विराजमान थी। तब उसने उस कन्या को निकाल लिया।

दूसरी ओर कागा महर्षि की धर्मपत्नी के पास पहुंचे तब पत्नी ने कहा कि कहो भाई कागा। तो उन्होंने कहा कि मुझको तो समर्पण कर दिया था। परन्तु मध्य में ही समाप्त हो गया।

तब ऋषि पत्नी ने शाप दे दिया।

उधर उस मछुए ने उस कन्या को किसी मल्लाह राज को समर्पण कर दी। मल्लाह लोग इसको मच्छोदरी कहने लगे। इसके पश्चात् वह कन्या चन्द्रमा के तुल्य बढ़ने लगी! शीघ्र ही पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य पूर्ण यौवन और पूर्ण सौन्दर्य को प्राप्त हो गई। भगवन् कुछ काल पश्चात् महर्षि पारा मुनि गंगा को पार करने के लिए वहां पहुँचे जहां वह मच्छोदरी सुशाभित हो रही थी। महर्षि तुरन्त ही गंगा नदी पार करना चाहते थे। परन्तु उस समय मच्छोदरी के पालक पिता भोजन पर नियुक्त थे। कहीं ऋषि क्रोधित न हो जायें इस कारण उसने मच्छोदरी से कहा कि तुम नौका द्वारा ऋषि को गंगा पार करा आओ।

गुरुजी! ऐसा सुना है कि उस समय वह मल्लाह की कन्या ऋषि के समक्ष पहुँची। उस कन्या को पा करके ऋषि का मन वासनामय हो गया। उसका हृदय चंचल गति को प्राप्त हो गया। उस मच्छोदरी से ऋषि ने अपनी इच्छा प्रकट की। तब मच्छोदरी ने उत्तर दिया कि महाराज! यह तो बड़ा पाप है। सूर्य उदय हुआ है। सूर्य का प्रकाश संसार में फैला हुआ है। और वरुण हमारे समक्ष है। हम क्या करें?

तो गुरुदेव ऐसा सुना जाता है कि उस समय महर्षि पारा ने गंगा में से जल लेकर ऊपर को उछाल दिया। मानो इन्द्र बरसने लगा और वहां उन्होंने अपनी काम-शक्ति को पूर्ण किया। तो भगवन् हमने तो ऊपर कहे अनुसार ही सुना है। आपने तो इसकी रूप-रेखा ही को भिन्न कर दिया। तो वास्तव में हम क्या मानें?

गुरुदेव ! हमने सुना है कि उससे मच्छोदरी के गर्भ की स्थापना हो गई। उस कुमारी कन्या मच्छोदरी के गर्भ से महर्षि व्यास उत्पन्न हुए। तो गुरुजी ! इस वार्ता में कहां तक यथार्थता है ? कहां तक सत्य है ? ही ही ही..................
हास्य।

बेटा ! जो तुम उच्चारण कर रहे हो उस सबको हम मान लेते, यदि हम स्वयं द्वापर काल को नहीं देखते। तब हम तुम्हारे सभी वाक्य मान कर लेते। परन्तु आज कैसे करें ? असत्य और निराधार वार्त्ता पर विश्वास नहीं होता। प्रकृति नियम के विरुद्ध वार्त्ता को हृदय स्वीकार नहीं करता। इसकी तो रूपरेखा इस प्रकार है।

(२३) महर्षि व्यास के जन्म का सत्य इतिहास :--

बेटा ! महर्षि पारा के अपनी धर्मपत्नी से दो पुत्र थे। महर्षि व्यास और दुन्दु ऋषि (धुन्धुऋषि)। तो बेटा जैसी यह वार्त्ता तुमने सुनाई है यह सब किसी धूर्त्त (वाममार्गी) मानव की बनाई हुई वार्त्ता है।

बेटा ! तुम जानते ही हो कि मछली का गर्भाशय कैसा होता है। माता का जैसा गर्भाशय होगा वैसी ही उसके सन्तान होगी। अर्थात् मानव-स्त्री के गर्भाशय से मानव और मछली के गर्भाशय से मछली। ऐसा परमात्मा का प्राकृतिक नियम है। इसमें कहीं भी अपवाद तक नहीं मिलता। यह तो बेटा तुम जानते ही हो।

(२४) योगीजन भी परमात्मा के नियम को नहीं तोड़ सकते :--

हां ! गुरुजी ? इसमें यह है कि योगीजन अपने योग की

शक्ति से परमात्मा के नियम विरुद्ध भी कर सकते हैं इसलिये सम्भव है कि ऊपर की घटना भी उसी रूप में घटी हो ?

अच्छा बेटा ! हमने तुम्हें एक वाक्य निर्णय कराया था कि जो जिसके निकट पहुंच जाता है वह उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करता ।"

बेटा ! जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति किसी राजा के राष्ट्र में पहुंच जाए और वह वहां भाग्यवश राज्य का मन्त्री बन जाय तो वह राजा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा । इसी प्रकार जो व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुंच जाता है, परमात्मा के ज्ञान का जानने वाला बन जाता है वह परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा । बेटा ! यह भी जान लो कि महर्षि पारा मुनि ऐसे व्यक्ति नहीं थे कि वे परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई कार्य करते । यह तो हो सकता है कि मानव के हृदय की गति अति चंचल हो जाए । परन्तु ऐसे महान् ऋषि तुरन्त ही उस पर अपना नियन्त्रण कर लेते हैं ।

मछली के गर्भ से मानव कन्या का जन्म होना तो सर्वथा ही नियम विरुद्ध है । इसको तो कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी स्वीकार नहीं करेगा । क्योंकि परमात्मा के बनाये नियम तो अटल हैं । सत्य हैं । तीनों कालों में एक से हैं । परमात्मा की चलाई परम्परा को कोई भी तोड़ नहीं सकता । चाहे महर्षि हो, चाहे योगी हो, चाहे मुनि हो । कोई भी मानव परमात्मा के नियम से दूर नहीं भागेगा । वह तो परमात्मा के नियम में ही चलता रहेगा ।

बेटा ! तुम्हें हमने प्रमाण दिया था कि जैसे मानव को शीत लगने लगे और वह अग्नि के समक्ष चला जाए तो ज्यों ज्यों उसमें

अग्नि के परमाणु प्रवेश करते जायेंगे त्यों त्यों उसका शीत दूर हो जाएगा। ऐसे ही देखो, जो मानव उस परमात्मा के गुणों को जान लेता है और ज्यों ज्यों शनैः-शनैः परमात्मा के गुण उसमें प्रविष्ट होते जाते हैं त्यों त्यों वह परमात्मा के नियमों में घिर कर कर्त्तव्य करने लगता है।

बेटा ! योगियों का तो ऐसा सुन्दर सिद्धान्त है। आज हमको उसे मान लेना चाहिए। इससे हमारा भी जीवन बनेगा और उसी में हमारा महत्त्व है।

बेटा ! महर्षि पारा मुनि के दो पुत्र थे। जो कि उनकी धर्म-पत्नी के गर्भ से ही उत्पन्न हुए थे। एक महर्षि व्यास मुनि महाराज और दूसरे दुन्दु ऋषि महाराज।

मुनिवरो ! देखो, मल्लोद्री के दो बालक थे। जो कि मल्लोद्री के साथ शन्तनु का विवाह संस्कार होने के पश्चात् हुए थे।

मुनिवरो ! यह है तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर। बेटा ! हमने ऐसा देखा और सुना था।

यदि कोई ऋषियों पर इस प्रकार का लाञ्छन आरोपित करता है तो यह उसकी बुद्धिमत्ता नहीं।

इस पर तुम यह कहोगे कि ऐसे वाक्य तो महर्षि व्यास ने स्वयं कहे हैं।

वास्तव में महर्षि व्यास ने तो यह कहा है कि वह गंगेश्वर राजा की पुत्री गंगा थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् महाराजा शन्तनु ने मल्लाह की अत्यन्त सुन्दरी कन्या मल्लोद्री से विवाह-संस्कार किया। बेटा ! हमने तो ऐसा देखा और सुना है। अब रही वार्त्ता आधुनिक समय की। बेटा ! यह तो तुम मूर्खों वाली वार्त्ता हमारे सामने नियुक्त करने लगे हो। अब बताओ तो हम

तुम्हारी ऐसी वार्त्ताओं का कहां तक निर्णय करते रहेंगे।

धन्य हो भगवन् !

मुनिवरो ! आज हम अपने व्याख्यान में महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। महान् ! देखो, मानव को ऐसा विचारवान् होना चाहिए कि मानव को सच मानने में कोई किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। जो सत्य का वाक्य हो उसको स्वीकार करने में बेटा ! न तुम्हारी हानि है और न हमारी हानि है।

बेटा ! तुम्हारे प्रश्न तो होते ही रहेंगे। कल इससे आगे के द्वापर काल के वर्णन करने की हमारी इच्छा है। कल तुम्हारे जो प्रश्न होंगे उनका निर्णय करते रहेंगे।

गुरु जी ! प्रश्न तो इस काल में बहुत हैं। और क्या हैं ? गुरु जी ! एक यह है। अच्छा कल ही उच्चारण कर देंगे कि जो कुन्तेश्वरी (कुन्ती) थी उसने भी पांचों पुत्र सब देवताओं से उत्पन्न किये थे।

अच्छा बेटा ! कल इस विषय पर व्याख्यान हो जाएगा। अब तो हमारा व्याख्यान समाप्त हो जाना चाहिए। क्योंकि आज हमारा इतना ही व्याख्यान होना था। बेटा ! कल इसके विशेषण में व्याख्यान दे देंगे। बेटा ! तुम्हारे प्रश्न तो चलते ही रहेंगे और हमारा भी उनका निर्णय करना कर्त्तव्य होगा।

कल हम अपना दार्शनिक विषय तथा द्वापर के समय का कोई व्याख्यान तुम्हारे समक्ष नियुक्त करेंगे। हमारा यह व्याख्यान समाप्त हो रहा है। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

मुनिवरो ! मानव को बुद्धि पूर्वक एवं महत्त्वपूर्ण विचार

करने चाहिए। इस प्रकार से मानव के जीवन की रूप-रेखा बदल कर महान् बन जाती है। मानव को सुन्दर रूप-रेखा बनानी चाहिए। यही मानव का कर्त्तव्य है।

महानन्द जी का तो कल का यह प्रश्न था कि मधु शान्ति पाठ हो जाय। परन्तु मधु शान्ति पाठ आज नहीं करेंगे। कल या किसी द्वितीय स्थान में ही देखेंगे। क्योंकि मधु शान्ति पाठ बहुत अधिक है। अब हमारा वेदों का पाठ होगा।

भगवन्! आप तो हमारी इच्छा किसी काल में भी पूर्ण नहीं किया करते हैं।

अरे देखा जाएगा कल।

अच्छा भगवन्!

वेद पाठ........

भगवान यज्ञविधान और विज्ञान

इस सार-सम्पूर्ण सदुपदेश से, सत संघर्षरत साहसी साधकों को अभीष्ठ सिद्धि का श्रेष्ठ सन्मार्ग मिलता है। सन्देश में बताया गया है लक्ष्य प्राप्ति में यज्ञ किस प्रकार सहायक होते हैं यज्ञ प्रकार और यज्ञ विधान पर पर्याप्त प्रकाश डालने से न केवल उनका माहात्म्य स्पष्ट होता है वरन उनकी सर्वकामना सम्पूर्ति शक्ति भी स्पष्ट हो जाती है।

शासक और सदाचार-दुराचार, राजा और राजनीति, सम्बन्धी सामग्री से जो शिक्षा समुपस्थित की गई है उससे हम आज भी समाज को सम्मुन्नत कर सच्चे सुख की प्राप्ति कर सकते हैं।

श्रीराम के आमन्त्रण पर रावण का धर्माचरण, रावण को यज्ञोपरान्त सम्पूर्णाहुति संनिर्वहन हेतु राम सीता द्वारा परिदान प्रदान प्रभृति कुछ ऐसे प्रभावोत्पादक प्रसंग हैं इस प्रवचन में जो हमें स्वकर्मनिष्ठ बनाते हुए, ज्ञान विज्ञान और भगवान की ओर ले जाते हैं।

—सम्पादक

स्थान—विनयनगर
दिनाङ्क ७ जनवरी १९६२

देखो ! मुनिवरो ! अभी अभी हमारा पर्यायण समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष वेदों का मनोहर गान गा रहे थे। यह भी तुम्हें विदित हो गया होगा कि जिन वेद मन्त्रों का अभी २ तुम्हारे समक्ष हमने पाठ किया उन वेद मन्त्रों में कितनी निधि है इनमें परमात्मा का कितना ज्ञान विज्ञान छिपा हुआ है। जिस परमात्मा ने बेटा ! हमारे लिए पौने दो अरब वर्ष पूर्व सब योजना नियुक्त की, उन योजनाओं को पाना तो बेटा ! दूर, उन का उच्चारण करना भी हमारी बुद्धि से परे है। उस विधाता ने इतना महान् अलौकिक इस संसार को बनाया है कि इसका हम वर्णन भी नहीं कर सकते।

मुनिवरो ! वेद मंत्र में तो ऐसा कहा जा रहा था कि मानव-जीवन को उच्च बनाने के लिए बहुत ऊंची योजनाओं की आवश्यकता है आज मानव यह न मान बैठे कि हमारी कोई योजना नहीं है। बेटा ! मानव के लिए सत्य-असत्य को जानना ही मानव का सबसे बड़ा धर्म है।

अरे मानव ! यह भी विचारो कि परमात्मा के नियम व यौगिक नियम बुद्धि से परे माने जाते हैं। इसलिए हे मानव ! तू यह न मान बैठ कि जो तेरी बुद्धि में नहीं आया वह असत्य है, कदापि नहीं। इसके लिए तुम अनुभव करो। योगाभ्यास करो। जीवन को उच्च बनाओ, आत्मारूपी दर्पण पर आये नाना प्रकार के मलों को अच्छी तरह नष्ट करो। उसके पश्चात् तुम्हें सब कुछ अनुभव हो जायेगा फिर तुम सभी कुछ जान जाओगे इस लिये बेटा ! मानव का यह सबसे बड़ा

परम कर्त्तव्य माना जाताहै । सत्ता को विचारने केलिए मुनिवरो ! अपने को विचारा जाता है कि मैं भी सत्य हूं या नहीं ? अरे ! जब तक हम स्वयं सत्य नहीं बनेंगे तब तक हम किसी सत्ता का किसी प्रकार निर्णय नहीं कर सकते ।

भगवान्-यज्ञ विधान और विज्ञानः--

आज मुनिवरो ! देखो संसार में इस प्रकार के बहुत से वाक्य हैं जो हमारी बुद्धि से पृथक् हैं । पृथक् होते हुए भी वे हैं अवश्य और उनका अस्तित्व भी है । आज हमारे वेद-पाठ में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन हो रहा था कि एक यज्ञ आत्मिक होता है और दूसरा भौतिक । अहा ! भौतिक यज्ञ कैसे करें । इस पूजा को कैसे कल्याणकारी बनायें यह ही मानव का विचारणीय विषय है हमारे आदि ब्रह्मा ने एक वाक्य कहा था कि बेटा ! तुम संसार में जा तो रहे हो पर संसार की स्थिति तो जानो । वहां जाकर अपने उच्च विधान से कार्य करोगे तो तुम्हारा विधान उच्च रहेगा । अन्यथा तुम्हारा विधान सब सूक्ष्म बन जायगा । यदि प्रजा या एक दूसरे प्राणी को ऊँचा बनाना है तो पूर्व स्वयं ऊंचे बनो । यज्ञ करना है और यज्ञ द्वारा प्रजा को लाभ पहुंचाना चाहते हो तो सबसे पूर्व यज्ञ को विधान से रचाओ । उन सब क्रियाओं से रचाओ जो हमारे महर्षियों ने वर्णन की हैं और वेदों के अनुकूल हैं बिना विधान यज्ञ करने से यज्ञ न करने के बराबर हो जाता है ।

मुनिवरो ! एक समय हमारे महानन्द मुनि ने प्रश्न किया था कि यज्ञ की कितनी प्रकार की परिपाटी होती है और यज्ञ का कैसा विधान होता है । आज वेद का वही प्रकरण आ गया है जो महानन्द जी ने अब से बहुत पूर्व प्रश्न किया था तो

मुनिवरो ! आज का वेद पाठ यही कह रहा है कि यदि यज्ञ रचाओ तो उसकी क्रियाओं को पूर्व ही जान कर करो। सूक्ष्म यज्ञ रचाओ या विशाल यज्ञ उसके लिये पहले से ही उच्च विधान बनाने की आवश्यकता है। उसके लिये सुन्दर तथा महान् योजना बनाओ। जिससे देखो ! तुम्हारे लिये सभी प्रकार के देवता लाभदायक हों जिन्हें तुम आह्वान करके हव्य पदार्थ अर्पण करना चाहतेहो। देखो ! इससे हमारावाक्य केवल यह नहीं कि आज हम हव्य से ही इस सुविधा को बनायें, ऊंची भावनायें बनाओ और ऊंची भावनाओं से देवताओं का अच्छी प्रकार पूजन करना चाहिये क्योंकि हम जब तक किसी ऊंचे व्यक्ति के लिये या ऊंचे देवताओं के लिये सुन्दर कार्य नहीं करते तब तक वह देवता हमें न कोई महत्त्व, न वाणी, न प्रकाश न प्राण ही प्रदान करेंगे।

इसलिये मुनिवरो ! यह आज का वेदपाठ कह रहा था कि यज्ञ करो तो विधान से करो और चुन कर करो। उद्‌गाता चुनो, अध्वर्यु चुनो, ब्रह्मा चुनो और महान् यजमान चुनो। मुनिवरो ! यजमान के विधान में ऐसा कहा गया है कि हमारे महर्षियों ने आदि ब्रह्मा ने तथा महर्षि तत्त्ववेतु मुनि महाराज ने ऐसा कहा है कि यजमान की धर्मपत्नी के बिना यज्ञ सफल नही होता। ऐसा ही बेटा ! राजा रावण ने राजा राम के यज्ञ कराते समय कहा था कि "जब तक तुम्हारी धर्मपत्नी न होगी तब तक यज्ञ की क्रिया अच्छी प्रकार न होगी और हे राम ! तुम्हारा यज्ञ कदापि सफल नहीं होगा।" तो मुनिवरो ! आज महानन्द जी प्रश्न कर रहे हैं कि उन्होंने यज्ञ किस प्रकार किया और कैसे किया

मुनिवरो ! उसका कुछ सूक्ष्म रूप हम तुम्हारे समक्ष आज वर्णन करेंगे कि यज्ञ जो होना चाहिए विधान के अनुकूल ही होना चाहिए जिससे मानव का जीवन ऊँचा बने। यह जो मानव का शरीर है यह भी एक प्रकार का यज्ञ है। मानो देखो! आज तुम इस शरीर रूपी यज्ञ के लिए नाना प्रकार की अशुद्ध आहुतियां देते रहो, अशुद्ध भोजन देते रहो तो यह तुम्हारा शरीर रूपी यज्ञ नष्ट हो जायेगा। तुम्हारा जीवन भी नष्ट हो जायेगा यदि तुम शरीर को अच्छा पदार्थ नहीं दोगे तो वह तुम्हें कदापि अच्छी बुद्धि नहीं देगा। तो मुनिवरो ! जो तुम यज्ञ करो उसमें संकल्प भी महान् ऊंचे होने चाहिएं। जैसे परमात्मा ने हमारे शरीर को विधान से बनाया है इसमें वायु भी है, अग्नि भी है, अन्तरिक्ष भी है, इसमें बेटा ! जल भी है पृथ्वी भी है सब कुछ है। ये सब एक साथ कार्य करते हैं यदि मुनिवरो ! एक भी विधान परमात्मा पृथक् कर दे तो हमारे शरीर का बेटा हरि ओम् तत्सत् हो जायेगा तो मुनिवरो ! यह हमारा आज का आदेश था कि यज्ञ करो तो विधान से करो। देव यज्ञ करने की मनोइच्छा है तो प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या को विधान से करना चाहिए।

मुनिवरो ! अभी अभी त्रेता के समय का एक वाक्य हमारे कंठ आ गया है जो महानन्द जी ने बहुत पूर्व प्रश्न किया था वर्णन तो बहुत विशाल है इसका वर्णन अन्यत्र कहीं बड़ा विशाल होगा। अब तो तुम्हें केवल त्रेता के समय का वर्णन सुनाये देते हैं। वह क्या है ? वह मानव के जीवन को ऊंचा बनाने वाला है आज प्रायः मानो महानन्द जी के कथनानुसार वह अशुद्ध माना जाता है परन्तु हम तो महर्षि वाल्मीकि जी के अनुकूल

अपने कथन को प्रारम्भ कर रहे हैं ! मुनिवरो ! वह क्या है ? महर्षि वाल्मीकि ने ऐसा कहा है कि बेटा ! जब राजा राम अपने महान् शिष्य-गणों को लेकर, सुग्रीव की सेना को लेकर समुद्र तट पर जा पहुंचे, वहां उनके दो बहुत बड़े वैज्ञानिक थे जिनको बेटा ! नल और नील कहते थे जो देखो शिल्प विद्या बहुत ही अच्छी प्रकार जानते थे उन दोनों वैज्ञानिकों ने समुद्र का शेष बांधना प्रारम्भ किया मुनिवरो ! इसके पश्चात् ऐसा कारण बना जिससे रावण को विदित हो गया कि राम संग्राम करने को विराज रहा है इस पर वह विचारने लगा कि मुझे क्या करना चाहिए। बेटा ! यह तो हमने तुमसे पूर्व ही वर्णन किया था कि राजा रावण बहुत ही बुद्धिमान् था, वह चारों वेदों का ज्ञाता था, वह अपनी क्रियाओं को भली भांति जानता था।

।। शासक और दुराचार, राजा और राजनीति ।।

तो मुनिवरो ! हमने कुछ ऐसा सुना है कि रावण ने अपने विधाता विभीषण को कंठ किया और मंत्री से कहा जाओ आज विभीषण को मेरे समक्ष लाओ उनसे कुछ वार्त्ता उच्चारण करूँगा। तो उस समय बेटा ! वह मत्री जी बहते भये विभीषण के द्वार जा पहुँचे. उस समय विभीषण ने कहा आज कैसा सौभाग्य है जो मेरे विधाता ने जो परमात्मा के बड़े विरोधी हैं मुझे कंठ किया है, मैं तो परमात्मा का बड़ा प्रिय हूं? उस समय वह अपना सौभाग्य मनाते हुए राजा रावण के समक्ष जा पहुंचे। राजा रावण ने कहा 'आइए विधाता, विराजिए'। तब विभीषण ने कहा मेरे योग्य कौन सेवा है ? विधाता ! आप तो परमात्मा के विरोधी हैं आपने आज परमात्मा के भक्त को अपने समक्ष बुलाया है यह क्या बात है ?

उस समय रावण ने कहा—"नहीं नहीं विधाता ! मैं तो तुमसे कुछ प्रार्थना कर रहा हूँ, मेरी एक इच्छा है आज राम मुझसे संग्राम करने आ रहा है। पूर्व तो मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम प्रिय परमात्मा के भक्त हो, नित्य प्रति ओ३म् का जप किया करते हो, मैं यह जानना चाहता हूं कि मैं राम से विजय पा सकता हूं या नहीं।"

उस समय बेटा ! विभीषण ने कहा था कि "हे भगवन् ! आप सात जन्म धारण करेंगे तब भी राम से विजय प्राप्त नहीं कर सकते।"

उस समय रावण ने कहा—'यह कैसे हो सकता है ?'

उस समय विभीषण ने कहा—'विधाता ! वह जो राम हैं बड़े वैज्ञानिक हैं, बड़े बलवान् हैं।'

रावण ने कहा—'अरे ! हम भी तो वैज्ञानिक हैं।'

उस समय विभीषण ने कहा—'महाराज ! आपके विज्ञान और उनके विज्ञान में कुछ भिन्नता है।'

क्या भिन्नता है ?

हे विधाता ! राम के द्वारा दोनों ही पदार्थ हैं। देखो आत्मिक सत्ता भी वैज्ञानिक सत्ता भी। दोनों सत्ताओं से वह तुम्हें विजय कर सकता है।'

उस समय रावण ने कहा कि-'तो हमें क्या करना चाहिए।'

उस समय विभीषण ने कहा-'मेरी इच्छा तो यह है देखो। यह तो पूर्व ही नियम है कि जिस राजा के राज्य में दुराचार होता है या जो राजा किसी कन्या या देवी का हरण करता है, उस राजा का राज आज नहीं तो कल अवश्य समाप्त हो जाता है हे भगवन् ! आपका तो विनाश होने वाला है यह तो मुझे पूर्व

ही विदित हो रहा है यदि आप मेरी याचना को स्वीकार करें तो विधाता ! माता सीता को ले जाइये और राम के चरणों में जाकर स्पर्श कीजिये । वे आपको अवश्य तथास्तु करेंगे ।'

उस समय जब रावण ने अपने विधाता से यह वाक्य सुना तब उसने क्रोध में आकर कहा—'अरे विधाता ! तुम मेरे विधाता नहीं शत्रु हो। क्या मैं अपने शत्रु के चरणों का स्पर्श करूँ ?'

उस समय बेटा ! देखो जब विनाश का समय आता है तब बुद्धि उसी प्रकार की बन जाती है। बेटा ! रावण ने अपने पदों की ठोकर से अपने विधाता को ठुकराना प्रारम्भ कर दिया।

उस समय विभीषण ने कहा—'नहीं विधाता ! मैं आपके हित की बात कर रहा हूँ ।'

उन्होंने कहा 'अरे ! मैं हित की बात नहीं चाहता । जाओ तुम भी वहीं चले जाओ जिसकी तुम आज मुझसे प्रशंसा कर रहे हो .'

मुनिवरो देखो ! उस समय जब रावण ने उन्हें अपने राष्ट्र में न रहने दिया तब वह बहते भये समुद्र तट पर राम के समक्ष जा पहुँचे। राम ने उनका सब परिचय लिया। विभीषण ने अपने जीवन की जो महान् घटनाएं थीं उन सब का वर्णन किया और कहा—'महाराज ! मैं आपकी शरण आया हूं ।' तब राम ने अपनी शरण दे दी।

बेटा ! वह वहाँ बड़े आनन्द पूर्वक रहने लगे। कुछ समय पश्चात् राम ने विभीषण से कहा—'हे विधाता ! मैं एक वार्त्ता जानना चाहता हूँ आप रावण के विधाता हैं, मैं रावण से संग्राम करने जा रहा हूं क्या मैं उससे विजय पा सकूंगा ?'

उस समय उन्होंने कहा—हे विधाता ! हे राम !! आप मेरी अनुमति लेते हैं तो मेरी यह अनुमति है कि आप सात जन्म भी धारण करेंगे तो भी रावण से विजय न प्राप्त कर सकेंगे।'

उस समय राम ने कहा—'यह क्या है ? क्यों विजय नहीं पा सकूँगा ? क्या विशेषता है उसमें ?'

उस समय विभीषण ने कहा—'हे राम ! वास्तव में तो रावण के पुत्र नारायण आदि बड़े बलवान हैं इसके अतिरिक्त रावण स्वयं ही बड़ा ज्ञानी और बलवान तथा वैज्ञानिक है उसके पुत्रों में भी यही विशेषतायें हैं। राजा रावण का पुत्र नारायण तत्त्व बड़ा विज्ञानी है, उसने विज्ञानके महान् यंत्रों की खोज की है, वह तुम्हारा विनाश कर देगा, इन सबको भी त्याग दिया जायेतो इसके पश्चात् रावण के गुरू शिव महाराज हैं जो कैलाशपति हैं।'

बेटा ! शिव किसको कहते हैं ? शिव तो परमात्मा को कहते हैं—परन्तु यहां तो बेटा ! ऋषि वाल्मीकि के कथनानुसार ऐसा उच्चारण किया जाता है कि राजा शिव जिसका संस्कार राजा हिमांचल के द्वारा माता पार्वती के समक्ष हुआ था, वह कैलाश-पति थे। जिसकी प्रजा कैलाश के तुल्य हो और प्रजा महान् हो मुनिवरो ! उस राजा का नाम शिव होता है। जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान एवं विज्ञान से, आत्मिक बल से, वेदों के स्वाध्याय से, जिसकी प्रजा बहुत ऊँची हो, जिसके राष्ट्र में देवकन्याये और मानव बहुत उच्च भावना वाले हों अर्थात् कैलाश पर्वत जैसी ऊँची भावना वाली प्रजा हो। बेटा ! उस प्रजा के स्वामी को शिव कहा जाता है।

मुनिवरो ! शिव तो परमात्मा को कहते हैं और सूर्य नाम

शिव का भी है जो हम पूर्व ही उच्चारण कर चुके हैं। आज तो कोई प्रकरण नहीं चल रहा है। तो मुनिवरो ! हमारे यहाँ महान् आचार्यों का एक विचार बना हुआ है जो मुनिवरो ! उनके गुण कर्मों के अनुकूल है तो देखो मुनिवरो ! राजा रावण के गुरु राजा शिव थे जिनकी प्रजा बहुत ऊंची थी बहुत वैज्ञानिक थी।

ऐसा राजा जो रावण की सहायता करता हो उस राजा की विजय क्यों न होगी। हे राम ! रावण के समक्ष चाहे जितने राम आ जाओ तब भी आप रावण को संग्राम में विजय नहीं पा सकोगे। उस समय राम ने कहा तो हे विधाता ! मुझे क्या करना चाहिये, मुझे तो विजय पानी ही है।

उन्होंने कहा भगवन् ! आप अजयमेध यज्ञ कीजिये और यदि यज्ञ विधान द्वारा किया गया तो आपकी विजय अवश्य होगी उस समय राम ने कहा मैं अवश्य करूंगा क्या शिव मुझसे प्रसन्न हो जायेंगे।

उस समय बेटा ! विभीषण ने कहा—"विधाता ! यदि आप अजयमेध-यज्ञ करेंगे और शिव को निमन्त्रण के अनुकूल नियुक्त करोगे तो महान् आप सब के समक्ष आ जायेंगे। आप अवश्य विजय पा जायेंगे !"

उस समय बेटा ! राम ने विभीषण के आदेशानुसार वहां सब सामग्री जुटाना प्रारम्भ कर दिया। जब सब सामग्री घृत आदि वहां एकत्रित होने लगा। बुद्धिमानों को आमन्त्रित किया गया उस समय विभीषण ने कहा कि हे राम ! यदि यह सब सामग्री भी जुट जावे परन्तु जब तक यज्ञ का ब्रह्मा, रावण नहीं बनेगा तब तक आपका यज्ञ सफल नहीं होगा।

उस समय राम ने कहा--"विधाता ! यह कैसे होगा ? मेरा शत्रु मेरे समक्ष कैसे आयेगा।"

उन्होंने कहा कि-"देखो ! रावण चारों वेदों का पंडित है यदि तुम निमन्त्रण देने जाओगे तो वह अवश्य आकर तुम्हारे यज्ञ को पूर्ण करेंगे।

मुनिवरो ! महर्षि वाल्मीकि जी ने यह ऐसा वर्णन किया है कि विभीषण वहां से अपने स्थान पर चले गये। वहां सब सामग्री जुट जाने के पश्चात् बेटा ! राम और लक्ष्मण ने रावण को निमन्त्रण देने की योजना बनाई। दोनों वहां से बहते हुए रावण के द्वार जा पहुंचे। रावण ने बेटा ! इससे पूर्व राम को कदापि नहीं देखा था। इसलिये बेटा ! रावण को उनकी कोई पहिचान न हो सकी। इस समय रावण अपने न्यायालय में विराजमान न्याय कर रहा था। उस समय के न्याय को पाकर राम ने लक्ष्मण से कहा, "रावण तो बड़ा नीतिज्ञ है। देखो ! कैसा सुन्दर न्याय कर रहाहै। धन्य हो। विधाता को निमन्त्रण दें तो कैसे दें। उस समय वह वहां कुछ समय शान्त विराजमान हो गये। न्यायालय में जब रावण का न्याय समाप्त हो गया तब वे उनके समक्ष पहुँचे।

राम के आमन्त्रण पर रावण का धर्माचरण

उस समय रावण ने कहा-"कहिए भगवन् ! किस प्रकार बहते हुए आये हैं। क्या याचना है ?"

उन्होंने कहा--"भगवन ! हम एक अजय मेध यज्ञ कर रहे हैं। वेदों के अनुकूल आप हमारे यज्ञ को पूर्ण कीजिये।"

रावण ने कहा—"तथास्तु ! जैसी तुम्हारी इच्छा होगी वैसा ही किया जायेगा।"

उस समय राम ने कहा—भगवन् ! समुद्र तट पर यज्ञ हो रहा है और हम आपको निमन्त्रित कर चले हैं। हे विधाता ! हम कल नहीं आ सकेंगे तृतीय समय में आप स्वयं वहां विराजमान होने का कष्ट करें।"

उस समय बेटा ! रावण ने देखो ! राम की उस याचना को स्वीकार कर लिया। वहां से वे दोनों विधाता ! बहते हुए समुद्र तट पर आ पहुंचे।

मुनिवरो ! अब हमने महर्षि वाल्मीकि के मुखारविन्द से ऐसा सुना है और हमारे महर्षि लोमश मुनि महाराज ने ऐसा देखा भी है कि जब राम और लक्ष्मण दोनों अपने स्थान पर पहुंच गये तो वहां उन्होंने यज्ञ की सब सामग्री घृत आदि को एकत्रित किया और बड़ी सुन्दर यज्ञशाला बनाई ऐसी सुन्दर यज्ञशाला बनाई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

मुनिवरो ! ऐसा विदित होने लगा जैसे ब्रह्मलोक से ब्रह्मा आ पहुंचा हो। अब देखो ! द्वितीय समय भी समाप्त हो गया। तृतीय समय आ पहुँचा। अब रावण की वहां प्रतीक्षा होने लगी ! कुछ समय के पश्चात् बेटा ! रावण भी अपने पुष्प विमान में विद्यमान होकर के उस महान् भूमि पर आ पहुंचे, जहां राम ने यज्ञशाला का निर्माण किया था। मुनिवरो ! वह वहां आ पहुँचे तो उन दोनों विधाताओं ने उनका बड़ा स्वागत किया और बेटा ! राम ने उन्हें अजयमेध यज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त कर दिया।

मुनिवरो ! ब्रह्मा चुने जाने के पश्चात् जब वहां यज्ञोपवीत धारण किये जाने लगे उस समय रावण ने उन सब का परिचय लिया। उस समय उन्होंने कहा—"भगवन् ! हमें राम कहते हैं।"

"हमें लक्ष्मण कहते हैं" जब उन्होंने अपना व्यक्तित्व उच्चारण किया तो रावण बड़े आश्चर्य में रह गया। अरे यह क्या हुआ। यह तो बड़ा आश्चर्यजनक कार्य हुआ। उस समय उन्होंने कहा-अरे ! चलो जब उन्होंने तुम्हें ब्रह्मा चुना है तो तेरा कर्त्तव्य है कि विधि विधान से यज्ञ पूर्ण कराऊं। उस समय उन्होंने कहा-"धन्यवाद ! अहो तुम्हारी धर्मपत्नी कहां है ?"

उस समय कहा-"विधाता ! मेरी धर्मपत्नी तो आपके गृह लंका में है।" उस समय मुनिवरो ! रावण ने कहा अरे ! मैंने यज्ञ को विधान से नहीं किया तो मैं देवताओं का महापापी बन जाऊंगा। मुझे अजय मेध यज्ञ करनेकेलिये इन्होंने ब्रह्मा बनाया है। मुझे परमात्मा मे बुद्धि दी है मेरा कर्त्तव्य केवल एक ही है कि मैं सीता को लाऊं और यज्ञ को विधान से पूर्ण करूं।

महर्षि वाल्मीकि ने ऐसा कहा है कि वह वहां से अपने पुष्पविमान में विद्यमान होकर लंका में सीता के द्वार जा पहुँचे और सीता से कहा—"हे सीते ! तेरा स्वामी यज्ञ रचा रहा है, समुद्र तट पर चलो।"

उस समय सीता ने कहा – हे रावण आप नित्यप्रति मिथ्या ही उच्चारण किया करते हो किसी समय सत्य भी उच्चारण किया करते हो ?"

"नहीं नहीं सीते ! मुझे तेरे स्वामी ने उस यज्ञ का ब्रह्मा चुना है।"

सीता ने जब इस आदेश को पाया तो प्रसन्न हो गई और महान् ! उसके पुष्पविमान में विद्यमान हो उसी स्थान

पर जा पहुंचे जहां विशाल अजय मेध यज्ञ करने का विधान बनाया गया था। वहां जाकर बड़े आनन्द से सीता, राम के दक्षिण विभाग में विद्यमान हो गई और रावण अपने दक्षिण विभाग में यज्ञ का ब्रह्मा बन गया। इसके पश्चात् यज्ञ आरम्भ होने लगा। मुनिवरो ! जब तक विधान से ऋत्विज् नहीं चुने जायेंगे चाहे कैसा भी यज्ञ हो वह लाभदायक नहीं होगा।

वहां आनन्दपूर्वक ऋत्विज् चुने गये। वहां देखो अध्वर्यु आदि भी चुने गये। यज्ञोपवीत धारण किये और यज्ञ आरम्भ होने लगा।

तो मुनिवरो ! हमने ऐसा सुना है कि महर्षि वाल्मीकि के अनुसार तथा महर्षि लोमश मुनि के निर्णय अनुसार जिन्होंने यज्ञ को देखा था कि यह यज्ञ इसी प्रकार चलता रहा।

मुनिवरो ! जिस समय यज्ञ की पूर्णाहुति होने वाली थी उस समय सीता ने राम से कहा—"हे राम ! आप यज्ञ तो रच रहे हैं परन्तु रावण के लिए आपके पास कुछ दक्षिणा भी है या नहीं ?"

तब राम ने सीता से कहा—"हे सीते ! मेरे पास क्या है मैं उन्हें क्या दक्षिणा दूं।"

सीता ने कहा—विधाता ! यह तो बड़ा द्रव्यपति राजा है। इसके यहां तो स्वर्ण तक के गृह हैं। मणियों के ढेर लगे रहते हैं। तो यह कार्य कैसे सम्पूर्ण होगा ?"

"तो मैं क्या करूं।"

तो उस समय बेटा देखो ! सीता ने क्या किया। उसके पास एक कौड़ी जूड़ा था वह उसने राम को दिया और कहा-"लीजिए महाराज ! आप ब्रह्मा (रावण) का स्वागत इससे लीजिए।"

देखो बेटा ! सीता का यह कौड़ी जूड़ा राम ने स्वीकार कर लिया।

अब मुनिवरो देखो ! यज्ञ चलता रहा। पूर्णाहुति होने के पश्चात् वहां बेटा ! यथा शक्ति स्वागत होने लगा। राम और सीता दोनों उस कौड़ी जूड़े को लेकर रावण के समक्ष जा पहुंचे। रावण ने कहा—'हे राम मुझे विदित होता है जैसे यह कौड़ी जूड़ा सीता का हो।' उस समय सीता ने कहा–'विधाता ! यह कौड़ी जूड़ा मेरा क्या है यह तो शुभ कार्य है। यह तो मेरे पिता दशरथ ने किसी समय मेरे लिए आभूषण बनवाया था आज यह आपके इस शुभकार्य में आ गया। मेरा क्या है।' उस समय रावण ने कहा हे सीते ! मुझे तुम्हारी यह दक्षिणा स्वीकार है। परन्तु मैं किसी के शृङ्गार को भ्रष्ट नहीं करना चाहता।'

जब मुनिवरो ! रावण ने यह वाक्य कहा तो प्रजा सन्न रह गयी और कहा—'अरे ! रावण तो बड़ा बुद्धिमान् है।" उस समय बेटा ! वहां यज्ञ पूर्ण हो गया पूर्ण होने के पश्चात् रावण ने कहा था–'हे राम ! बिदित होता है कि तुम्हारी मनोकामनायें अवश्य पूरी होंगी।'

आशीर्वाद देकर सीता से कहा—'हे सीते ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने पति की सेवा करो, नहीं तो मेरी लंका को चलो।

धर्म और यज्ञ का फलदायी माहात्म्य

उस समय सीता ने कहा—'हे विधाता ! आज से तो तुम मेरे पिता ब्रह्मा बन गये हो। मुझे तो यहां भी ऐसा और वहां भी ऐसा। भगवन् ! मैं आपके द्वारा चलूंगी।'

मुनिवरो ! इसका नाम धर्म है। राम ने भी यह नहीं कहा कि सीते तू कहां जाती है। तब वह बेटा रावण के साथ पुष्प-विमान में विद्यमान हो गई। रावण ने उस समय ऋग्वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए सीता से कहा था। "हे सीते ! आज मुझे विदित होता है कि अब मेरे विनाश का समय आ गया है मेरी लंका नष्ट भ्रष्ट होने वाली है।"

सीता ने कहा ! "हे विधाता ! आप इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं ?" उन्होंने कहा–हे सीते ! मेरी जो महान् प्रजा है समाप्त होने वाली है ! जो देखो ! महान् शत्रु बना बैठा है। जिसने शत्रु को अपना लिया और अपना कर उसको ब्रह्मा बना करके उसकी आत्मिक ज्योति को खींच लिया। हे सीते ! उसकी मनोकामना क्यों न पूरी होगी। आज मुझे विदित होता है कि मझे यह यज्ञ पूर्ण नहीं करना था यज्ञ पूर्ण होने से मुझे विदित हो गया कि मेरी लंका में एक भी मानव नहीं रहेगा।" यह वाक्य उच्चारण करते हुए रावण बड़े शोक से युक्त हो गया।

यह है बेटा ! आज का हमारा आदेश। हम उच्चारण कर रहे थे कि मानव को अगर दूसरे को लाभ पहुंचाना है दूसरों को उन्नति पर पहुंचाना है तो उस यज्ञ को उस महान् कार्य को विधान से करो। वेद मंत्रों को जानो और उनको जानकर उनके अनुकूल वेदों का लक्षण करो। महान् यज्ञ को रचाओ। शुभ-कार्य करो। यदि यज्ञ विधान से नहीं कियागया, तो वह कदापि सम्पूर्ण नहींहोगा। मुनिवरो ! यह हमारा केवल नवीन मत नहींहै यहतो उनका मत है जिन्होंने बेटा ! यज्ञ को सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया।

अरे देखो ! यह तो कुदरती बुद्धि में आने वाला वाक्य है

कि परमात्मा ने जब सृष्टि प्रारम्भ की तो आत्मा के विरोध से की यदि परमात्मा विधान से इस सृष्टि को न बनाता तो यह संसार इस प्रकार नहीं चल सकता था जैसा आज चल रहा है परमात्मा ने इस सृष्टि रूपी यज्ञ को उत्पन्न किया।

आज हम मनुष्य रूपी यज्ञ को उत्पन्न करें। आज हम भौतिक यज्ञ करें। देवताओं को सुगन्धित हव्य पहुंचायें। देवताओं को पौष्टिक पदार्थ प्रदान करें। यह हमारा कर्त्तव्य है। आज हम विशेष यज्ञ के ऊपर ही प्रकाश दे रहे हैं। हमारा वेद पाठ यह ही कह रहा है कि यज्ञ को पूर्ण करो और पूर्ण विधान से करो। धर्म से करो, अधर्म से मत करो। दुर्भावना से न करो।

देखो ! जिस पद के तुम अधिकारी हो या तुम्हें चुना गया है वह चाहे तुम्हारे लिए हानिकारक है परन्तु तुम्हारा कर्त्तव्य है कि उसका पूर्ण रूपेण पालन करो उसको लाभ हानि न पहुंचाओ। यदि लाभ हानि पहुँचाओगे तो तुम्हें कोई भी लाभ प्राप्त न होगा।

धन्य हो भगवन् !

तो मुनिवरो ! अभी अभी हम व्याख्यान दे रहे थे कि देखो कल हमारा दार्शनिक विषय चल रहा था और कल भी दार्शनिक विषय चलेगा। कल यह वर्णन करेंगे कि वास्तव में बृहस्पति लोक की क्या स्थिति होती है आज तो हमारा केवल व्यवहार की वार्ता चल रही थी कि मानव को कार्य करने से पूर्व उसका महान् विधान बना लेना चाहिए जैसा राजा रावण ने बनाया। चाहे आपत्ति आये चाहे जीवन समाप्त हो जाये परन्तु उसका शाकल्य पूर्ण बनाओ जिस

पदके अधिकारी हो उसे पूर्णकरो ऊँचे कर्त्तव्य से करो। जीवनकी योजना को ऊँचा बनाओ। शरीर रूपी यज्ञ को भी जानते रहो शरीर रूपी यज्ञ में जो महान यजमान यह आत्मा है,जो आत्मा को प्रेरणा दे रहा है, वह संसार रूपी यज्ञ को और संसार रूपी यज्ञ को उत्पन्न करने वाला है उसका यजमान बना बैठा हुआ है आत्मा। आज आत्मा को जानो। आत्मा को पहिचानो परन्तु आत्मा तभी जानी जायेगी जब तुम शुद्ध रूप से यज्ञ रचाओगे। ऊँचे कर्म करोगे तभी तुम्हारी आत्मा बलवान् होगी। जैसे राजा राम ने शुभ कर्म किये जिससे उनकी आत्मा बलवान् हो गई और महान् देखो ! रावण को सहज ही विजय कर लिया।

अहा ! कैसा सुन्दर वेद पाठ था। कैसा सुन्दर आदेश था। महर्षि वाल्मीकि मुनि महाराज ने भी क्या महान् वाक्य कहे और राजा रावण ने भी सुन्दर वाक्यों से वर्णन किया।

क्या करें बेटा ! ज्ञान तो बड़ा ही विशाल है। ज्ञान-वन में पहुंचने पर तो विदित ही नहीं होता कि कितना बड़ा है यह। मुनिवरो ! वेदों का तो ज्ञान ही विशाल है आज वेदों पर दृष्टि पहुँचाई जाती है तो इसका बहुत ही उच्च प्रकरण आता है।

देखो ! कल के व्याख्यान में हम तुम्हें बृहस्पति का वर्णन करेंगे तब तुम्हें विदित होगा कि वेदों में कितनी निधि है और मानव कहां का कहां जा सकता है क्या मानव की स्थिति होती है यह तो एक सूक्ष्म सी वार्ता है जो तुम्हारे समक्ष उच्चारण की। देखो हमारा दार्शनिक विषय किसी किसी स्थान पर आता है। बेटा ! अब हमारे आदेश समाप्त होने वाले हैं क्योंकि समय भी समाप्त हो गया है।

अच्छा धन्यवाद ! गुरुजी यह जो हमने आपसे प्रश्न किया

था उसका अभी तक आपने हमें कोई भी उत्तर नहीं दिया।'

'कल ही प्रश्नों का उत्तर दे देंगे बेटा !'

'अच्छा धन्यवाद !'

तो मुनिवरो ! अभी अभी हम महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे अभी यज्ञ का प्रकरण आ रहा था। कल हमारा अश्वमेध यज्ञ का प्रकरण है, अश्वमेध यज्ञ का वर्णन करेंगे और कुछ लोकों की वार्ता और दार्शनिक विषय होगा। अब हमारा आदेश समाप्त हो गया है। अब हमारा वेद पाठ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्ता समाप्त हो जायेगी।

'धन्यवाद !'

वेद पाठ

वेदोच्चारण के विविध विधान

।। वेद आत्मा प्रकृति परमात्मा का सम्बन्ध ।।

यह ज्ञान गवेषण गर्भित गरिमामय, विशेषताओं से विभूषित व्याख्यान, विभिन्न वेदोच्चारण के विविध विधानों से परिपूर्ण, आत्मा प्रकृति परमात्मा के सम्बन्ध से समलंकृत मात्र आध्यात्मिक आनन्द अभिदाता ही नहीं है। इसमें 'गणेश' जैसे बहुपूजित देव के वास्तविक आधिभौतिक अर्थों का भी प्रतिपादन किया गया है।

इतना ही नहीं आज का जगत् जिन ज्वालाओं में झुलस रहा है उनकी शांति, संतृप्ति और शीतलता का समाजवादी समाधान भी है इसमें, इसमें ब्राह्मण की व्याख्या के अतिरिक्त बताया गया है कि किसे कहते हैं क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ? वर्णव्यवस्था का मूलाधार क्या है जन्म या गुण-कर्म ? बालाओं के वर्ण विधान को भी सप्रमाण प्रस्तुत किया गया है।

जातिवाद की जन्जीरों से जकड़ी जनता को एक नवज्योति नवजीवन मिलेगा इसमें। और मिलेगा वेद विद्या और अध्ययन का अधिकारी है कौन, प्रश्न का उत्तर भी।

—सम्पादक

स्थान—विनयनगर
दिनाङ्क–७–३–६२

देखो मुनिवरो ! अभी अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष वेदों का मनोहर गान गा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि जिन वेद मन्त्रों का हमने तुम्हारे समक्ष पाठ किया। जैसा हम पूर्व स्थान में उच्चारण कर चुके हैं कि वेदों का पाठ कई प्रकार से उच्चारण किया जाता है। जैसे माला पाठ होता है घन पाठ होता है, जटा पाठ होता है और विशंग पाठ होता है। उदांग और मदांग का विलग और दोनों की सन्धि करके भी पाठ किया जाता है। जटा पाठ तो हम नित्य प्रति किया करते हैं परन्तु घन पाठ ऐसी मनोहर शैली से किया जाता है बेटा ! कि मार्ग के सिंह तक आकर उस गान को सुना करते हैं। अहा ! किसी स्थान पर अवसर मिलेगा तो उच्चारण करेंगे। वास्तव में तो कर्मों के अनुकूल वेदों का उच्चारण उस प्रकार नहीं किया जाता जिस प्रकार वेदों का स्वाध्याय किया और जो वास्तविक हमारी धुन थी। उस धुनि से हम वेदों का पाठ कदापि नहीं कर सकते परन्तु वेदों ने, हमारे विद्वानों ने और हमारे आदि आचार्यों ने भी ऐसा कहा है कि न करने से कुछ उच्चारण करना भी विशेष माना गया है। जैसा भी काल आये उसके अनुकूल ही वाणी से उच्चारण होना अनिवार्य हो जाता है।

बेटा देखो ! वेदों का गान गाते समय अमृत की धारा बह रही थी ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे परमात्मा हमें कुछ देन दे रहे हों, बेटा ! वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के नाते जो प्रकाश है वह ईश्वर की देन है। आज जब हम ईश्वर का कुछ गान

गाते हैं तो हृदय मुग्ध हो जाता है क्योंकि आत्मा उस परमात्मा का बालक है। जैसे बेटा ! योग्य माता का बालक, माता की प्रशंसा करता हुआ मुग्ध हो जाता है और प्रशंसा करता ही रहता है। इसी प्रकार वेदों का ज्ञान जो ईश्वरीय ज्ञान है और आत्मा का भोजन है को गाते गाते आत्मा मुग्ध हो जाता है अन्तःकरण पवित्र होने के लिये चला जाता है। न जाने मानव के हृदय में कहां से ज्योति जाग्रत होने के लिए प्रविष्ट हो जाती है।

गणेश का वास्तविक अर्थ

अहा ! हमारा यह विषय नहीं था जो आज प्रारम्भ होने लगा। आज 'गणेभ्यो' देखो गणपति के नाम का कई स्थानों पर वर्णन आया। गणपति बेटा ! परमात्मा को कहा जाता है जो सर्व गणों में गणपति माना जाता है जो संसार में गणना के तुल्य है उस विधाता को देखो बेटा ! गणेशायते कहते हैं।

मुनिवरो ! गणेश मानव को भी कहते हैं। महाराजा शिव जिनका राज्य हिमांचल में हुआ उस माता पार्वती का पुत्र भी गणेश था। उससे पूर्व बेटा ! गणेश उपाधि मानी जाती थी। परन्तु वेद गान में कहा "गणपति आनचत्ते विश्वायते रूपायण" वास्तव में गणेश उसको कहते हैं जो गनैती हो, गनैती करने वाला हो जो महान् देखो ! अयुक्त रहने वाला हो, जिसको न राग हो न द्वेष हो, जिसकी घ्राण शक्ति अधिक हो, जो देखो ! सब गन्ध व सुगन्ध को अपने में धारण करने वाला हो, मानो उसको बेटा ! गणेभ्यो कहते हैं। परमात्मा सबसे बड़ा गणपति माना गया है परमात्मा संसार को गन्ध सुगन्ध को

अपने में धारण करता रहता है।

एक समय माता पार्वती ने अपने स्वामी से कहा "हे महाराज! हमारा जो यह बालक है जिसको हम गणेश कहते हैं यह हमारे गर्भ स्थल से उत्पन्न हुआ है, इसकी घ्राण शक्ति बहुत अधिक है। घ्राण शक्ति अधिक होने के नाते यह तो ऐसा है जैसे इसमें परमात्मा के विशेष गुण हों। यह तो बहुत संस्कारों वाला है। इसको हमने कदापि युवावस्था तथा रजोगुण में नहीं देखा। संप्रति इसमें तीनों गुणों का भास है या नहीं? इसका क्या कारण है?

बेटा! हमने उस त्रेता काल को देखा है जिस काल में महाराजा शिव और माता पार्वती थी। उस काल में मुनिवरो! माता पार्वती अपने सत्संगों में अपने पुत्र गणेश की प्रशंसा अवश्य किया करती थी।

आज हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या है। वह यह कि जैसे देखो! वह गणेभ्यो, वह परमात्मा महान् गंध सुगन्ध को धारणा करने वाला है ऐसा ही प्रत्येक मानव को बनना चाहिए। यदि कोई मानव कटुवचन भी उच्चारण कर जाय उसको सहन कर लेना चाहिए और सहन करके उस पर मनन करना चाहिए। मुनिवरो! आचार्यों ने ऐसा कहा है कि जो मानव दूसरों को हानि पहुंचाने का प्रयत्न करता है वह स्वयं हानि का पुतला बन कर नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। वेद गान भी ऐसा ही कह रहा था परन्तु वेदों का व्याख्यान कहां तक देवें। वेदों में तो विशाल ज्ञान का भंडार भरा पड़ा है बेटा! बहुत काल हुआ जब वेदों का स्वाध्याय किया था इसीलिए आज भी वह हमारे सामने निधि है।

आज महानन्दजी के कथनानुसार तो संसार बहुत अधोगति की ओर चला जा रहा है। आज मानव को विचार लगा लेना चाहिए कि हमें किस प्रकार का बनना है हमारा जीवन कितना अलौकिक है और हमारे महान् आचार्यों ने कैसे अलौकिक जीवन को माना है।

मुनिवरो देखो! महाराज शिव ने एक समय अपने पुत्र गणेश से कहा—'हे पुत्र गणेश! तुम अपने अन्तःकरण की भावनाओं का उच्चारण करो।' यह क्या विशेषता है जो हम तुम्हें रजोगुणी नहीं देख पा रहे हैं?

उस समय उन्होंने कहा—हे भगवन्! जब मैंने संसार में जन्म धारण किया है तो संसार में ही रहना है। आप जैसे बुद्धिमान् माता-पिता मिले हैं फिर भी यह मन देखो! नाना प्रकार की तुच्छताओं में निवास करता है और अच्छी भावनायें भी सोचता है हे भगवन्! इसलिए हम यही विचारते हैं कि मन से अच्छी वार्ता ही करें। जब मन से अच्छी वार्ता विचारते रहते हैं तब भगवन् देखो! उसमें रजोगुण आने का कोई कारण ही नहीं बनता। भगवन् देखो! जन्म धारण करते ही जिह्वा पर ओ३म् की रेखा खींची जाती है। महान! देखो उस रेखा में हमें बांध दिया और वह रेखा हमारे समक्ष है।

मन-रसना तत्व

इस रसना का सम्बन्ध मन से है। इसलिए यदि ओ३म् शांत हो जायेगा तो हमारा जीवन ही शांत हो जायेगा, ओ३म् हमारा सबसे मुख्य जीवन माना गया है। इसका भगवन्। वेदों में बड़ा महत्व है। हे भगवन्! जब नामकरण संस्कार होता है उस समय माता-पिता कहा करते हैं 'कतमो असि' कहां से आये

हो ? उस समय हम कहते हैं कर्मों का भोग भोगने के लिए आये हैं। बाल्यावस्था में उसे ज्ञान तो नहीं रहता परन्तु उसे उच्चारण का कुछ ध्यान तो रहता ही है। उस काल में शब्द ध्वनि बन जाती है। ध्वनि बन करके हम कर्मों का भोग भोगने के लिए आये हैं, इसलिए आज हम भगवन् ! रजोगुणी होकर क्या करेंगे। रजोगुणी होकर भी हमें संसार में जीवन पूरा करना है और सतोगुणी रह कर भी।

'भगवन् ! रजोगुण में रहेंगे तो जीवन हमारा अधोगति में चला जायेगा और पार्थिव बनता चला जायेगा। यदि हम अग्नि तुल्य सतोगुणी बनेंगे तो जीवन ऊपर की ओर जायेगा। अन्त में देखो ! सूर्य मण्डल में होते हुए बृहस्पति लोक क्या मोक्ष तक को प्राप्त हो जायेंगे। इसलिए भगवन् हमें आज उन गुणों की आवश्यकता नहीं जिन्हें आप उच्चारण कर रहे हैं।'

गुरुदेव ! हमने तो ऐसा सुना है कि गणेश की घ्राण शक्ति बहुत अधिक थी और ऐसा भी सुनते हैं कि उस बालक का शिर हाथी का था। आप तो केवल उसकी विशेषता ही उच्चारण कर रहे हैं।'

(हास्य ....)। 'और बेटा ! क्या उच्चारण करें। जो तुम उच्चारण करो वही हम भी उच्चारण कर दिया करें।'

'गुरुजी ! हमने तो ऐसा सुना है कि गणेश जी को तो हाथी का एक विशाल स्तम्भ माना जाता है।'

(हास्य) 'तो महानन्द जी। यह वार्ता तुम्हारे हृदय में आती है।'

'गुरु जी ! आप हमारी वार्ता क्या ले रहे हो। हमारे हृदय में आवे न आवे आप अपना निर्णय कीजिए।'

'अच्छा महानन्द जी ! हमारा तो निर्णय यह है कि मानव के हाथी की सूंड नहीं होती । अब तुम उच्चारण करो ।'

गुरु जी ! हमारा विश्वास है कि विज्ञान के अनुकूल मानव के कंठ के ऊपरी भाग को पृथक् करके दूसरा शीश लगाया जा सकता है ।'

'बेटा ! यह सत्य है परन्तु यह भी तो विचारो कि कहां एक मानव का सिर और कहां एक हतंग का शीश । कितना विशाल बन जायेगा । यह तो बेटा ! तुम्हारे विचारने की बात है ! महानन्द जी ! यदि तुम ऐसा ही मानते हो कि गणेश जी के हतंग की सूंड थी तो बेटा ! यह न माननेवाला वाक्य होजायेगा क्योंकि मानव के कंठ का और हतंग के कंठ का कोई सम्बन्ध नहीं । इसीलिए बेटा ! हम तुम्हारी वार्ताओं को कदापि स्वीकार नहीं करेंगे ।'

'तो गुरु जी ! यदि आप हमारी वार्ताओं को स्वीकार नहीं करेंगे तो क्या वह हुआ नहीं था ?'

'अरे देखो भाई ! इसका यह अभिप्राय नहीं, जैसा तुम उच्चारण कर रहे हो । यहां ऐसी तुच्छ समाज नहीं ? अरे ! किन्हीं अज्ञानियों में जाकर इस व्याख्यान को देना । तुम्हारी वार्ता अवश्य स्वीकार हो जायेगी । तुम यहां यह वार्ता क्यों उच्चारण कर रहे हो किसी मूर्ख सभा में यह वार्ता कह देना । हमें कोई आपत्ति नहीं । तुम्हारी सत्यवार्ताओं के ग्रहण करने में हमें किसी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं । और न किसी बुद्धिमान् को होनी ही चाहिए । परन्तु तुम्हारा यह वाक्य न मानने वाला है, हम तुम्हारे वाक्यों को अवश्य स्वीकार कर भी लेते यदि हमने बेटा ! वह काल न देखा होता ।'

'अच्छा भगवन् ! आप ही कुछ कृपा कीजिए।'

तो मुनिवरो ! अभी अभी महानन्द जी कुछ प्रश्न कर रहे थे परन्तु इनके कैसे प्रश्न हो जाते हैं ? इनके ऐसे मूर्खता वाले प्रश्न से सभा के सब कार्य भंग हो जाते हैं। हमारी विचारधारा भी ऐसी ही रह जाती है। और उसमें सब कार्य समाप्त हो जाता है। यह मूर्खानन्द ऐसे ऐसे प्रश्न कहां से लाता है ?

मुनिवरो ! अभी अभी हम प्रारम्भ कर रहे थे कि मनुष्य को गणेश की भांति बनना चाहिये। देखो जैसे गणेश अपने में गन्ध और सुगन्ध को धारण करने वाला होता है इसी प्रकार प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्याओं को बनना चाहिये क्योंकि उसी से जीवन का विकाश होता है। यदि मानव जीवन पा करके अपने जीवन का विकाश नहीं किया तो मानव का जीवन न होने तुल्य माना जाता है। बेटा ! यह हमारा व्याख्यान था। आज हम व्याख्यान देते देते कहां पहुंच गये।

ब्राह्मण की व्याख्या

आज हमारे वेद पाठ में "ब्राह्मण" शब्द की बड़ी ऊंची व्याख्या आई है। देखो ! ब्राह्मण किसको कहा जाता है। कल महानन्द जी का एक प्रश्न था। वर्णव्यवस्था जाति से होती है या गुण कर्मों से ? यह जातिवाद का शब्द कहां से ले आये ? चलो कोई बात नहीं। हम इसका समाधान करेंगे। जैसा हमने सुना है और जैसा हमने पूर्व काल में देखा है और जैसा आचार्य जनों से सुना है और जैसा वेदों के स्वाध्याय से हमने अनुभव किया है उसके अनुकूल अवश्य उच्चारण करेंगे।

देखो ! हमारे शम्भु मुनि महाराज ने और भी आदि

आचार्यों ने वर्णन किया है कि मानव को मानव समाज के चार विभाग कर देने चाहिये। वह चार विभाग कौन से होते हैं ? जैसे मानव के शरीर के चार विभाग होते हैं इसी प्रकार हमारे समाज के भी चार विभाग माने जाते हैं। परम पिता परमात्मा ने जैसे हमारे शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और महान् शूद्र नियुक्त किये हैं ऐसे ही यह प्रजा भी चार भागों में नियुक्त की गई है।

जिससे हमारे राष्ट्र का कार्य, राष्ट्र की उन्नति हो। एक दूसरे को कुदृष्टि से न देखें परन्तु अपने अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहें। देखो हमारे शरीर में कंठ से ऊपर वाले भाग का नाम ब्राह्मण है। ब्राह्मण में तीव्र बुद्धि होती है वह वेदों का ज्ञाता होता है। ऐसे ही हमारे कंठ से ऊपर वाले भाग में सब सत्ता होती है । देखो ! वाक्य पाने की, दृष्टि से देखने की, रसना से कुछ आहार करने की, तथा रस लेने की और वाक्य से उच्चारण करने की और भी बेटा ! त्यागी और तपस्वी सभी कुछ माना गया है। मुनिवरो ! जिसमें इतने गुण हों उसे ब्राह्मण कहा जाता है। जैसा अभी अभी वर्णन किया जा रहा था कि ब्राह्मण उसी को कहा जाता है जिसमें बुद्धि और महान् इतना त्यागी हो जैसी बेटा ! हमारी रसना। जो नाना प्रकार के आहारों को धारण करती है। अन्न तथा अन्य सुन्दर से सुन्दर पदार्थ मुख में आते ही न जाने कहां चले जाते हैं। और इस त्यागी वाणी के द्वाराकुछ नहीं रहता। जो बेटा ! ऐसा बुद्धिमान् ब्राह्मण हो, जिसने वेदों की विद्या को अच्छी प्रकार निगला हो, स्वाध्याय किया हो। और निगल कर दूसरों को देने वाला हो। उसको यहां ब्राह्मण की उपाधि दी

जाती है।

अहा ! ब्राह्मण त्यागी हो तो कैसा? जैसे बेटा ! हेमन्त ऋतु आ रही है। शरद् वायु चल रही है। सर्व शरीर वस्त्रों से ढका रहता है परन्तु यह मुखारविन्द ऐसे ही रहता है। तो ऐसा बेटा ! ब्राह्मण जो इतना बड़ा तपस्वी हो कि वह विद्या में अपना सब कुछ भूला हो। ऐसे गुणों वालों को बेटा ! ब्राह्मण कहा जाता है।

इसके पश्चात् क्षत्रिय आ जाता है क्षत्रिय उसको कहते हैं जो बेटा ! सबकी रक्षा करने वाला हो। ब्राह्मण पर कोई आक्रमण करे तो बेटा ! क्षत्रिय सुनते ही उसकी रक्षा करे। हमारे शरीर में बेटा ! यह भुज क्षत्रिय माने गये हैं। भुजों में प्राकृतिक बल होता है और अपने बल से सब को रक्षा करते हैं इसी प्रकार क्षत्रिय सब की रक्षा कर राष्ट्र का कल्याण किया करते हैं। विद्या का प्रसार हो जाता है। राष्ट्र के वैश्य जन भी महान् बन जाते हैं। यह देखो बेटा ! क्षत्रिय है। हमारे आदि आचार्यों ने शम्भु मुनि ने इन भुजाओं को क्षत्रिय के तुल्य माना है।

* जातिवाद का वास्तविक स्वरूप *

इसके पश्चात् मुनिवरो ! हमारा उदर आता है जहां जठराग्नि विराज रही है। मानो देखो ! यह एक बड़ा रहस्य है। सब पदार्थ जो रसना में मुख द्वारा धारण किये जाते हैं उदर में स्थित हो जाते हैं। जठराग्नि उन पदार्थों को पचा देती है। पचा करके जो जिसकी सत्ता है जिसका पदार्थ है वह उसको प्राप्त हो जाता है। बेटा ! बरतने का कार्य वैश्य का होता है। बेटा ! राष्ट्र में किसी प्रकार की आपत्ति आ जाये,

राजा पर किसी प्रकार की आपत्ति हो, क्षत्रिय पर किसी प्रकार की आपत्ति हो, ब्राह्मण को दान देने वाला यह सबको ही देता रहता है। जो ऐसे गुणों वाला होता है बेटा! उसे वैश्य की उपाधि प्राप्त की जाती है।

यहां बेटा! शूद्र किसको कहते हैं। महान् जो न तो व्यापार ही कर सके, न कृषि ही अच्छी प्रकार कर सके, जिसमें बुद्धि न हो। मुनिवरो! देखो! जो हमारे शरीर में पद हैं वे तीन वर्णों की अच्छी प्रकार सेवा करते हैं। यह तो बेटा! परमात्मा की रचना है। अब मानव की रचना सुनो।

हमारे शम्भु मुनि आचार्य ने हमारे गुरु ब्रह्मा आदि ने इस सम्बन्ध में एक समय में देखो! क्या वर्णन किया है सतोयुग में कपिल मुनि महाराज, मार्कण्डेय ऋषि महाराज और भृगु ऋषि महाराज आदि ऋषियों का एक दार्शनिक समाज विराजमान हुआ और नियुक्त किया गया कि हमें चारों वर्णों का प्रकरण लेना है तो किस प्रकार लेना चाहिए और उनकी वर्ण व्यवस्था कैसे व्यक्त करें। उस समय स्वाम्भु मुनि महाराज ने ब्रह्मा से निवेदन किया 'हे ब्रह्म देव हे गुरु देव! हम तो यह जानने आये हैं कि संसार में राष्ट्र का निर्माण कैसे किया जाये यह तो सतोयुग है सब ही सत्यवादी हैं। न किसी को रोग है न शोक है न द्वेष है आगे तो ऐसा समय नहीं रहना। हे भगवन्! आप हमें बताइये राष्ट्र का निर्माण कैसे हो? आपकी कृपा होगी।'

उस समय मुनिवरो! गुरु ब्रह्मा ने ऐसा कहा कि वास्तव में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जो होने चाहिएं वह गुण कर्मों के अनुकूल होने चाहिएं। तभी राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। राजा को महान् बनने के लिए अनिवार्य है कि वह राष्ट्र में

धर्म मर्यादा बाँध कर गुण कर्मों के अनुकूल वर्ण व्यवस्था स्थापित कर राष्ट्र पालन भली प्रकार करे।

तो मुनिवरो! देखो! उस समय कोई भी जातिवाद न था और न किसी प्रकार का विशेषण था यह तो बेटा! हमारे आदि आचार्यों ने स्वाम्भु मुनि आदि आचार्यों ने, मार्कण्डेय ऋषि महाराज आदि ऋषियों ने दार्शनिक समाज में विराज कर इस समाज का राष्ट्र का निर्माण किया था। मानो देखो यह वर्ण व्यवस्था हमारे आदि आचार्यों ऋषियों ने नियुक्त की है। दार्शनिक समाज में यह प्रश्न भी आया कि भाई वर्ण व्यवस्था तो नियुक्त कर दी परन्तु प्रजा यह जानकारी कैसे करें कि कौन ब्राह्मण है? कौन शूद्र है? कौन वैश्य है? कौन क्षत्रिय है? उस समय मुनिवरो! आदि ऋषियों ने एक विशेष प्रणाली चलायी जो बेटा! आज तक हमें कंठ है, वह कार्य हमने पूर्व समय में किया भी था। वह क्या है? बेटा हमारे आदि ऋषि ब्राह्मण जन उन गुणों को जानने वाले बन गये। भिन्न २ स्थान पर बुद्धिमान् आचार्यों के विद्यालय थे जिन्हें देखो! गुरुकुल कहते थे जहां बालक जाता था, गुरु के कुल में जाने पर, गुरु जानकारी करा देता था कि अरे! यह बालक तो ब्राह्मण के गुण वाला है अथवा यह वैश्य के गुण वाला है अथवा क्षत्रिय गुण वाला है या शूद्र बनने वाला है।

इस प्रकार माता पिता अपने बालक को पूर्व ही वर्ण में बांध देते थे। तो मुनिवरो! यह विद्वानों बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है, यह ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है, यह आत्मज्ञानियों का कर्त्तव्य है। जिस काल में आत्मज्ञानी होते हैं उस काल में बेटा! वर्णव्यवस्था ऊँची बन जाती है। मुनिवरो हमने भी ऐसा किया

और महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराजा का तो कर्त्तव्य ही यह था कि वह राम के राज्य में जितने भी अवर्ण रहते उनको विद्या के अनुकूल जानकारी करा देते थे। तो मुनिवरो ! इतनी विद्या होनी चाहिये जिससे मानव की जानकारी कर सकें।

जातिवाद का जन्म गुण कर्म

बेटा ! हमारे आदि आचार्यों ने तो ऐसा कहा है कि एक ब्राह्मण का बालक, एक क्षत्रिय का बालक, एक शूद्र का बालक, एक महान् वैश्य का बालक, जब चारों बालक गुरुकुल में जाते हैं तो गुरु उनकी जानकारी कर लेते हैं—कि अरे ! यह कौन २ से गुण वाला बालक है। जिसमें ब्राह्मण के गुण हों ब्राह्मण कुल में नियुक्त किया जाता था। और वैश्य गुणों वाला उसे वैश्य कुल में नियुक्त करते थे। और जो शूद्र गुण वाला, जिसमें बुद्धि न होती थी और जो न वेदविद्या पढ़ पाता था और नाही धनुर्वेद को ही सीखता था उसको मुनिवरो ! शूद्र की उपाधि दी जाती थी। ऐसा आदि आचार्यों ने बेटा ! नियुक्त किया था। उसी के अनुकूल हम यह उच्चारण कर रहे हैं, जिस वर्ण-व्यवस्था को हमने बहुत पूर्वकाल में देखा आज वह तुम्हारे समक्ष नियुक्त कर रहे हैं, ऐसे ही शूद्र का बालक मानो गुरु के कुल में जाने से यदि वह बुद्धिमान् हो, वेदों का स्वाध्याय करने वाला हो, ब्राह्मण के कर्मकाण्ड को जानने वाला हो जाता था तो उस बालक को ब्राह्मण कुल में नियुक्त कर देते थे। आज नहीं हम तो इस संसार को लाखों वर्षों से देखते चले आ रहे हैं। परन्तु यह उस काल की वार्त्ता है जिस काल में राम राज्य की स्थापना हो रही थी।

जिस काल में बेटा ! बुद्धिमान् अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहते

है उस काल का ही नाम बेटा राम राज्य कहा जाता है। राम-राज्य वैसे नहीं आता। रामराज्य की व्याख्या बहुत ही विशाल है। मुनिवरो! राम के समय को देखा जाता है तो हमारी बुद्धियों में नाना प्रकार के संकल्प विकल्प आ जाते हैं। राम तो बेटा! विराजमान रहते थे परन्तु वशिष्ठ मुनि महाराज जो कुल पुरोहित माने जाते हैं उनकी उपाधियां ब्रह्मादि मानी गई हैं।

तो बेटा! जिस काल में कर्मों के अनुकूल वर्ण व्यवस्था होती है, जिस राजा के राष्ट्र में इस प्रकार की प्रजा होती है उसको बेटा! हमारे यहां रामराज्य कहा जाता है। कहां तक वार्त्ता उच्चारण करें बेटा! व्याख्यान बहुत विशाल है, कहाँ तक इस आदेश को देखें देखी हुई वार्त्ता उच्चारण करने लगें तो बेटा! समय के समय समाप्त हो जाते हैं।

वेद विद्या का अधिकार किसे ?

अभी अभी हम उच्चारण कर रहे थे कि हमारे यहां कर्मों के अनुकूल वर्ण व्यवस्था मानी गई है और वेद में भी ऐसा ही माना है। वेद में कहा है कि मेरी विद्या पाने का सभी को अधिकार है परन्तु उसका ही अधिकार है जिसकी क्रिया भी उसके अनुकूल हो। जो उस पर न चलने वाला हो उसको मेरी वेद विद्या पाने का कोई अधिकार नहीं है। मुनिवरो! जो चलने वाला हो वह कोई भी हो किसी भी कुल में जन्मा हो परन्तु वह इसके योग्य है और उसी को अधिकारी माना गया है।

[महानन्द] "गुरुदेव! जब मानव की वर्णव्यवस्था इस प्रकार मानी जाती है तो देवकन्याओं को वर्ण व्यवस्था किस प्रकार मानी गई है। इसको भी आपने कुछ निश्चय किया होगा।"

'बेटा ! यह हमारा निश्चय किया हुआ नहीं, यह तुम्हें भ्रान्ति है यह तो हमारे आदि ऋषियों का निश्चय किया हुआ है।'

'गुरुजी ! हमें तो कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है जैसे आपका ही निश्चय किया हुआ है।'

'अरे क्यों ?'

'वह इसलिये कि हे भगवन् ! आधुनिक काल में हम यह देख रहे हैं कि जातिवाद माना जा रहा है;आज हम सूक्ष्म शरीर द्वारा लाक्षागृह पर विचरण कर रहे थे तो ऐसा देखा,आप कर्मों के अनुकूल क्यों मान रहे हैं।'

[हास्य] ही ही ही बेटा ! यह तो हमारे दार्शनिक जन पूर्व कह चुके हैं। कहांतक उन वाक्यों को दुहरायें तुम्हारे समक्ष। एक समय महर्षि नारद, उद्दालक मुनि महाराज, पापड़ी मुनि महाराज, शौनक मुनि महाराज, स्वाम्भु मुनि महाराज,कोपात्री जी, महर्षि कपिल मुनि महाराज आदि ऋषियों का एक समाज विराजमान था। वहां वर्णन होने लगा कि सतोयुग क्या है त्रेता क्या है द्वापर क्या है और कलियुग क्या है ?

जब तीनों कालों का वर्णन हो चुका और कलियुग का वर्णन होने लगा तो मुनिवरो ! देव ऋषि नारद मग्न होने लगे। महर्षि पापड़ी मुनि महाराज ने कहा कि आप मग्न क्यों हो रहे हो ? तब देवर्षि नारदमुनि महाराज ने कहा था कि जिस समय द्वापर समाप्त हो जायेगा उस समय इतना बड़ा अज्ञान हो जायेगा कि जिसकी जैसी बुद्धि होगी उसी के अनुसार धर्म की मर्यादा चलने लगेगी। अहा ! तब दार्शनिक समाज ने नारद मुनि से प्रश्न किया कि भगवन् ऐसा क्यों होगा ? उन्होंने कहा

था कि जिस काल में अज्ञानता आ जाती है। जिस काल में धर्म की मर्यादा समाप्त हो जाती है। उसी काल का नाम कलियुग माना गया है। जैसे मानव की बाल अवस्था, युवा अवस्था, मध्यम अवस्था, वृद्ध अवस्था ये चार अवस्थायें हैं। इसी प्रकार यह सतोयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग हैं। जब मानव की वृद्ध अवस्था हो जाती है उस समय बुद्धि समाप्त हो जाती है। अज्ञानता छाने लगती है, उसमें वह निधि नहीं रहती जो बाल्यकाल में रहती है। जिस काल में जो निधि समाप्त हो जाती है उस काल में वैसे अज्ञान के मत चल जाते हैं। जब देवऋषि नारद ने यह कहा तो बेटा वहां यह नियुक्त किया गया कि आगे कलियुग का काल आ जायेगा। उस काल में नाना प्रकार के मतों में चल कर महान् देखो ! वेद के अनुयायी तो बनेंगे परन्तु देखो वेद के वाक्यों को न मानकर अपनी जठराग्नि की पूर्ति के ही प्रयत्न किये जायेंगे। यह बेटा ! आज नहीं देव ऋषि नारद ने बहुत समय हुआ इन वाक्यों का निर्णय किया था। दार्शनिक समाज का यह प्रश्न कि सतोयुग किसे कहते हैं कलियुग किसे कहते हैं इसका वर्णन तो कल करेंगे। यह तो केवल संकेत करने के लिए कहा था। तो बेटा ! यह तो बहुत पूर्वकाल में निश्चय किया गया था। यदि आधुनिक काल में जातिवाद चल रहा है तो बेटा ! चलने दो। इसमें हमारा क्या प्रयोजन है। इसमें हमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। बेटा ! हम तो उस वाक्य का उच्चारण करेंगे जो हमारे आदि ऋषियों ने नियुक्त किया है। यदि बेटा हम तुम्हारी अज्ञानता भरी वार्ताओं को मान लेवें तो बेटा ! हमारी आत्मा की हानि हो जायेगी। वेद वाक्यों की हानि हो जावेगी। मर्यादा समाप्त हो जायेगी। इसीलिये बेटा !

हम तुम्हारे वाक्य कदापि श्रवण नहीं करेंगे।'

कन्यायें और वर्णव्यवस्था

मुनिवरो देखो! अभी अभी हमारा व्याख्यान प्रारम्भ हो रहा था। महानन्दजी ने प्रश्न किया कि देवकन्याओं की वर्ण-व्यवस्था किस प्रकार मानी जाती है? मुनिवरो! हमारे यहां ऐसा माना है कि जिसमें ब्राह्मणों के गुण हों वही कन्या ब्राह्मण कुल में जाने योग्य है। जिसमें क्षत्रियों के गुण हों वह कन्या क्षत्रिय कुल में जाने योग्य है। जिसमें वैश्य के गुण हो वह वैश्य कुल में जाने योग्य है। जिसमें बुद्धि न हो उसकी शूद्र संगत नियुक्ति कर दें। तो मुनिवरो! यह कैसे की जाती है? हमने तो उस काल को देखा है। आदि ऋषियों से भी सुना है और हमारे गुरुदेव ने भी नियुक्त किया है, और कहा है कि आदि ऋषि ऐसी जानकारी करते हैं बेटा! ब्राह्मणी के गुण जिस कन्या में होते हैं वह इतनी बुद्धिमती होती है कि अन्य कन्याओं के भी वर्ण विभाग उसी प्रकार कर देती है जैसे मुनिवरो देखो! आचार्य ब्राह्मण और ऋषिवर कर देते हैं ऐसा ही बेटा! पूर्व ऋषि पत्नियों ने भी किया है। जैसे महानन्द जी तुमने माता अनसूया जी को देखा होगा।

"हां हां कृपा कीजिये।"

तो मुनिवरो! माता अनसूया सब क्रियाओं को जान करके कन्याओं की वर्णव्यवस्था को बनाया करती थी। ऐसा तुमने देखा भी होगा और सुना भी होगा। जैसा हमारे आदि आचार्यों ने कहा है आज तुम्हारे समक्ष नियुक्त कर रहे हैं। मुनिवरो देखो! जो कन्या ब्राह्मण के गुण वाली हो उसको

ब्राह्मण के कुल में नियुक्त किया जाता है जिससे मर्यादा समाप्त न हो। जिसमें क्षत्रिय के कुल वाले गुण हों, बलवान् हो महान् ब्रह्मचर्य धारण करने वाली हो, पति को प्रेरणा देने वाली हो कि "भगवन् ! राष्ट्र का उत्थान करो अपने अस्त्र शस्त्रों से वर्णों की सेवा करो तो मुनिवरो ! उसको क्षत्रिय कहा गया है।

बेटा ! आगे चलकर वैश्य का कुल आता है जो कन्या व्यापार में साथ देने वाली हो जो नाना प्रकार का वर्ण और नाना प्रकार की विवर्णता चलाने वाली हो उसी को बेटा ! यहां वैश्य कहा जाता है।

इसी प्रकार बेटा ! जो तीनों में से कोई भी कार्य न कर सके उस कन्या को बेटा ! शूद्र कुल में नियुक्त किया जाता है।

"गुरुजी ! हमारा वही प्रश्न दुबारा आ चुका है इसका आपने कोई प्रमाण नहीं दिया कि किस कुल की कन्या किस वर्ण में नियुक्त कर देवें जैसे क्षत्रिय की कन्या में ब्राह्मण के गुण होवें तो क्या वह ब्राह्मण के योग्य है ?"

"हां ! क्यों नहीं।"

"अच्छा भगवन् ! चाहे शूद्र की हो।"

"हां क्यों नहीं। चाहे किसी की क्यों न हो। यदि उसमें ब्राह्मण के गुण हैं तो अवश्य वह उसके योग्य है।"

"तो गुरुजी ! इसका कोई यथार्थ प्रमाण हो तो दीजिये कृपा करके।"

"बेटा ! बहुत प्रमाण हैं।"

"तो एक सूक्ष्म सा दे दीजिये कृपा होगी।"

"अच्छा सुनो !" महानन्दजी ने अभी अभी एक प्रश्न किया कि हमारे द्वारा क्या प्रमाण है कि किसी कुल की कन्या का

किसी और कुल में संस्कार किया गया हो। वास्तव में तो बहुत से प्रमाण हैं परन्तु एक ऐसा प्रमाण दिये देते हैं जो सभी के आंगन में आ जाये और उसको भली भांति अपने हृदय में धारण कर लें। मुनिवरो ! यह त्रेता काल का समय हमारे कण्ठ आ गया है।

कन्या का कुल परिवर्तन

मुनिवरो ! मही राष्ट्र का राजा महिदन्त था। वह महान् चक्रवर्ती राजा था और चक्रवर्ती राजा होने के नाते लंका भी उसके आधीन थी। एक समय पुलिस ऋषि महाराज ने महाराज शिव से निवेदन करके लंका में एक स्थान नियुक्त किया था। स्वर्ण का गृह था जिसमें महाराज पुलिस ऋषि विश्राम किया करते थे। कुछ समय के पश्चात् ऐसा हुआ कि जो जिस राष्ट्र का राजा था वह उस राष्ट्र का राजा चुना गया। लंका का स्वामी महाराजा कुवेर बन गया। और भी सब राजाओं ने अपने २ राष्ट्रों को अपना लिया। राजा महिदन्त का सूक्ष्म सा राज्य रह गया।

राजा महिदन्त के न तो कोई पुत्र था और न कोई कन्या थी। कुछ समय के पश्चात् ऐसा सुना गया कि राजा महिदन्त के एक कन्या उत्पन्न हुई। तो राजा महिदन्त ने बड़ा ही आनन्द मनाया। नाना वेदों के पाठ कराये, जन्म संस्कार बड़े उत्सव से कराया। उसके पश्चात् बेटा ! कन्या कुछ प्रबल हुई तो महाराजा की धर्मपत्नी सुरेखा ने कहा—'हे भगवन् ! इस कन्या को तो गुरु के कुल में जाना चाहिए। जिससे भगवन् ! यह विद्या पाकर परिपक्व हो जाये।' उस समय महाराजा महिदन्त अपनी धर्मपत्नी की याचना को पाकर उस कन्या को लेकर कुल पुरोहित

महर्षि तत्वमुनि महाराज के समक्ष पहुँचे । बेटा ! ऐसा सुना गया है कि उस समय वह दो सौ चौरासी वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारी थे। वहां पहुँच कर राजा ने और कन्या ने भी महर्षि के चरणों का स्पर्श किया। और राजा ने कहा—'भगवन्! मेरी कन्या को यथार्थ विद्या दीजिए। जिससे भगवन् मेरी पुत्री हर प्रकार की विद्या में सफल हो जाये।' महर्षि वाल्मीकि ने इस सम्बन्ध में ऐसा वर्णन किया है कि राजा महिदन्त तो अपने स्थान पर चले गये और ऋषि ने उस कन्या को शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। शिक्षा पाते २ वह कन्या बड़ी महान् बनी और विद्या में बहुत ऊँची सफलता प्राप्त की । वह नैतिक यज्ञ और कर्मकाण्ड में प्रकाण्ड हो गई। वह वेदों का हर समय स्वाध्याय करती थी। उस समय ऋषि ने अपने मन में सोचा कि यह कन्या तो क्षत्रिय की है परन्तु इसके गुणों को देखते हैं तो ब्राह्मण कुल में जाने योग्य है। अब क्या करना चाहिए। ऋषिवर यही नित्य प्रति विचारा करते थे।

तो मुनिवरो ! आगे हमने सुना कि कुछ काल पश्चात् वह कन्या युवा हो गई। जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा परिपक्व होता है। वह कन्या अपने ब्रह्मचर्य से परिपक्व थी। राजा अपनी धर्मपत्नी के कथनानुसार वहां से बहते भये ऋषि से जाकर प्रार्थना की कि भगवन् ! अब कन्या को गृह में ले जाना चाहते हैं। अब इसका संस्कार भी करना चाहिए। अब मुझे नियुक्त कीजिए कि मेरी कन्या कौन से गुणवाली है। किस वर्ण में इसका संस्कार होना चाहिए। अहा ! उससमय बेटा ! ऋषि ने कहा— भाई तुम्हारी कन्या तो ऋषिकुल में जाने योग्य है। आगे तुम किसी के द्वारा इसका संस्कार करो हमें कोई आपत्ति नहीं।

राजा वहां से उस ब्रह्मचारिणी कन्या को लेकर राजगृह आ पहुंचे।

मुनिवरो ! हमारे यहां यह परिपाटी है कि जब ब्रह्मचारिणी या ब्रह्मचारी गुरुकुल से आये तो माता पिता यजन और ब्रह्मभोज कर उनका स्वागत करें।

मुनिवरो ! इसी प्रकार माता पिता ने उस कन्या का यथा-शक्ति स्वागत किया। स्वागत करने के पश्चात् हमने ऋषि वाल्मीकि के कथनानुसार ऐसा सुना है कि पत्नी ने अपने पति से कहा—'महाराज ! अब तो हमारी कन्या युवा हो गई है। इसके संस्कार का कोई कार्य करो।'

उस समय बेटा ! महाराज नित्य प्रति वर के लिए भ्रमण करने लगे। भ्रमण करते २ पुलिस ऋषि महाराज के पुत्र मनिचन्द के द्वार जा पहुंचे। मनिचन्द के एक पुत्र था जो वाल्मीकि के कथनानुसार अड़तालीस वर्ष का आदित्य ब्रह्मचारी था। वह प्रजन्य ब्रह्मचारी वेदों का महान् प्रकाण्ड था। महा-राज ने मनिचन्द से निवेदन किया—'महाराज ! मेरी कन्या को स्वीकार कीजिए, मैं तुम्हारे पुत्र से अपनी कन्या का संस्कार करना चाहता हूँ।'

उस समय मनिचन्द ने कहा–'महाराज ! हमारे ऐसे सौभाग्य कहां हैं जो इतनी तेजस्वी कन्या हमारे कुल में आये।' उस समय बेटा ! उस बालक वरुण ने और माता पिता ने उसके संस्कार को स्वीकार कर लिया। उस समय राजा मग्न होते हुए अपने घर आ पहुंचे।

नक्षत्रों के अनुकूल समय नियुक्त किया गया। कुछ समय के पश्चात् वह दिवस आ गया। मनिचन्द अपने पुत्र वरुण से

बोले कि हे पुत्र ! आदि ब्राह्मण जनों का समाज होना चाहिए। जिस कन्या का जिस पुत्री का जिस पुत्र का वेद के विद्वानों में विद्वत् मंडल में संस्कार होता है, उसका कार्य हमेशा पूर्ण हुआ करता है।

उस समय बेटा ! नाना ऋषियों को निमंत्रण दिया गया। निमंत्रण के पश्चात् विद्वत् समाज वहां से नियुक्त हो राजा महिदन्त के समक्ष आ पहुंचा। राजा महिदन्त ने देखा कि बड़ा विद्वत् मण्डल है। उस समय राजा ने यथाशक्ति स्वागत किया। ऋषियों की परिपाटी के अनुकूल उस समय ब्रह्मचारिणी अपने पति का स्वयं सत्कार करने जा पहुंची। मानो नाना सखियों से गुथी हुई पुष्पमालायें तथा नाना प्रकार की सेवायें उस कन्या ने उनके समक्ष नियुक्त कीं। उन्होंने वह स्वीकार कर लीं। इस प्रकार बेटा ! राजा ने अपने सम्बन्धियों का यथाशक्ति स्वागत किया। स्वागत के पश्चात् यथा स्थान पर विराजमान किया गया। अहा ! बड़े आनन्द पूर्वक सायंकाल कन्या के संस्कार का समय हो गया। बड़े आनन्द से वहाँ संस्कार होने लगा। बुद्धिमानों के वेद मंत्र होने लगे। ब्रह्मचारी अपने वेद मन्त्रों का गान गा रहा था ब्रह्मचारिणी अपने वेद मंत्र गा रही थी। मानो बेटा ! भिन्न २ स्थान पर वेदों के गान गाये जा रहे थे। बड़ी आशानन्दी से बेटा ! वह संस्कार समाप्त हो गया। वेद की मर्यादा के अनुकूल उन्होंने अपने २ स्थान पर जा विश्राम किया।

अगला दिवस आया उस समय शरद् वायु चल रही थी उसके कारण उस बालक के सम्बन्धी स्नान नहीं कर रहे थे। उस समय उस बालक ने कहा–'अरे ! तुम स्नान क्यों नहीं कर रहे ?' उस समय उन्होंने कहा–'अरे ! स्नान क्या करें। शरद वायु चल

रही है।'

तो मुनिवरो ! उस समय उस बाल ब्रह्मचारी ने जो वेदों का ज्ञाता था, जो विज्ञान की मर्यादा जानता था उसने प्रयत्न किया और कहा—'हे महान् वायुदेव ! तुम हमारे कार्य में विघ्न डाल रहे हो। कुछ समय के लिए शांत हो जाओ।' उस समय उस ब्रह्मचारी के संकल्पों द्वारा वायु कुछ धीमी हो गई, सभी सम्बन्धियों ने स्नान किया।

महानन्द बेटा ! तुम यह प्रश्न करोगे कि उसने वायु को कैसे शांत कर दिया ? बेटा ! उसने वह प्रयत्न किया जिससे वायु का वेग शांत हो गया। अहा ! देखो यह मन के संकल्प का प्रभाव था। यह तो महान् विद्या का विषय है। किसी दूसरे स्थान में इसका उत्तर देंगे।

(महानन्द) 'अभी दे दीजिए भगवन् !'

'नहीं भाई ! किसी द्वितीय स्थान में देंगे।'

'अच्छा ! जैसी आपकी इच्छा।'

तो मुनिवरो ! नाना सम्बन्धी स्नान कर अपने २ स्थानों पर नियुक्त हो गये। इसके पश्चात् द्वितीय समय आया। और वहां सब अपने २ गृह को जाने लगे। उस समय राजा महिदन्त ने यथा शक्ति सभी का स्वागत किया। जब कन्या जाने लगी तो एक ने कहा—अरे भाई देखो ! यह पुत्र इतना योग्य था परन्तु राजा महिदन्त ने अच्छी प्रकार स्वागत नहीं किया।' उस समय राजा महिदन्त व्याकुल होने लगे उन्होंने व्याकुल होकर कहा—हे सम्बन्धियो ! मैं क्या करूँ मेरा तो यह काल ही ऐसा है, कोई समय ऐसा था जब चक्रवर्ती राज्य था अब तो जितना द्रव्य था सब लंका चला गया। महाराजा कुबेर उसका स्वामी बन गया

है।' उस समय इन वार्ताओं को स्वीकार कर सबने अपने २ स्थान की ओर प्रस्थान किया।

विद्या बल की विजय

उस बालक ने अपने गृह पहुंच कर सोचा कि मेरे सम्बन्धीने जो यह कहा है कि मेरी लंका को कुबेर ने विजय कर लिया है तो आज मुझे कुबेर से लंका को विजय करना है। बुद्धिमान् सर्वत्र पूज्य होता है। पुलिस ऋषि महाराजा का पौत्र था इसलिये वह जिस राष्ट्र में जाता था वहां ही उसका स्वागत होता था। जो स्वागत में कुछ देता तो ब्रह्मचारी उससे मांगते दश हजार सेना मुझे दो जिससे मेरा काम बने। इस प्रकार प्रत्येक राज्य से दश दश हजार सेना एकत्र करके उसने लंका पर हमला किया और राजा कुबेर को जीत लिया। उस समय राजा कुबेर ने कहा था—"अरे भाई! तुम मुझे क्यों विजय कर रहे हो।" उस समय उस महान् ब्रह्मचारी ने कहा था—अरे कुबेर! मैं तेरे राष्ट्र में शान्ति नहीं देख रहा हूं।

जिस काल में, जिस राजा की प्रजा शान्त न हो उस समय उस राजा को पद से गिरा देना धर्म है और उसके स्थान पर शांतिदायक आत्मज्ञानी को जो प्रजा को यथार्थ सुख शान्ति देने वाला हो राजा बनाना चाहिये।

उस समय उस ब्रह्मचारी ने राजा कुबेर को लंका से पृथक् कर दिया। वह अपने राष्ट्र में जहां का था वहां ही जा पहुंचा उस समय वह बालक वरुण राजा महिदन्त के सम्मुख जा पहुँचा और उनसे बोला—"महाराज मैंने! आप की लंका को विजय कर लिया है। आप अपनी लंका को स्वीकार कीजिये।" उस समय राजा महिदन्त ने कहा कि "हे ब्रह्मचारी! लंका को तुमने विजय किया

है मुझे स्वीकार है। परन्तु स्वीकार करके मैंने यह लंका अपनी कन्या के दहेज में तुम्हें अर्पण कर दी।

तो मुनिवरो ! वहां सब राजा नियुक्त किये गये और वहां का राजा उस बालक को नियुक्त किया गया। उस समय राजाओं ने ऋषियों का समाज नियुक्त किया और कहा कि भाई यह वरुण बालक लंका का स्वामी बना। इसका द्वितीय क्या नाम उच्चारण करें। यह तो ब्रह्मचारी पद का नाम है। उससमय ऋषियों आचार्यों आदि ने उस बालक का नाम रावण नियुक्त किया।

तो मुनिवरो ! यह है हमारा यथार्थ वाक्य ! तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि महाराजा महिदन्त की कन्या का संस्कार उस बालक से हुआ जो ब्राह्मण के गुणों वाला था। आगे चल करके चाहे कैसा ही गुण उसमें बन जाये। यह है बेटा ! हमारे समस्त प्रमाण। समय मिलेगा तो किसी द्वितीय स्थान में और भी प्रमाण देंगे। इसके भिन्न ७ प्रमाण हैं। अब तो बेटा ! हमारे व्याख्यान समाप्त होने वाले हैं।

तो मुनिवरो ! यह आज का हमारा व्याख्यान वर्णव्यवस्था के ऊपर था जो हमारे आर्ष ऋषियों ने माना है। बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है कि यथार्थ वाक्य को अवश्य ही ग्रहण कर लेना चाहिये। अब हमारा व्याख्यान समाप्त हो गया है। कल जैसा समय मिलेगा उसके अनुसार व्याख्यान देंगे।

(महानन्द) "कल तो भगवन् ! आप वह व्याख्यान देंगे ही जिसकी आपसे प्रार्थना की थी।"

"हां कल का कल देखा जायगा।"

"अच्छा !"

वेद पाठ........

ब्राह्मण कैसे हों ?

अवान्तर-विषयः—(क) यथार्थ विद्या के खोजी हों। (ख) सब की परीक्षा करने वाले हों। (ग) राजाओं को कल्याणमयी सर्व हितकारी शिक्षा देने वाले हों।

(१) संसार की उत्पत्ति का कारण। (२) वेद का महत्त्व तथा मूल कारण। (३) प्रलय में वेद कहां रहता है। (४) जीव के लिये वेद का महत्त्व। (५) जीव के पूर्ण विकसित जीवन की शक्ति और अहंकार का नाश। (६) ब्राह्मण किसे कहते हैं ? (७) ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज के व्याख्यान में पुनरुक्ति का कारण। (८) अजय-मेध-यज्ञ या अजा-मेध-यज्ञ। (९) अजय-मेध-यज्ञ करने का कौन अधिकारी है ? (१०) यज्ञ में धर्मपत्नी का महत्त्व। (११) यज्ञवेदी की सजावट क्यों ? (१२) अधिकारी से ही यज्ञ कराने का विधान। (१३) यज्ञ के समस्त कर्मकाण्ड का महत्त्व। (१४) जल सिंचन का महत्त्व। (१५) ब्रह्म का कर्त्तव्य। (१६) मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण का प्रयोजन। (१७ उद्गाताओं का कर्त्तव्य। (१८) अध्वर्यु का कर्त्तव्य। (१९) सामग्री की शुद्धता का महत्त्व। (२०) यजमान की आहुतियों का तथा भावनाओं का महत्त्व। (२१) ऋत्विजों का कर्त्तव्य। (२२) समिधाओं का महत्व। (२३) सामग्री की महत्ता। (२४) सामग्री का वैज्ञानिक लाभ। (२५) ज्ञानाग्नि में स्नान करने पर जीव के जीवन की सफलता आदि।

—सम्पादक

❀ ओ३म् ❀

स्थान:—लाजपतनगर

दिनांक:—३-४-१९६२

अद्भुत संसार की उत्पत्ति का कारण

देखो मुनिवरो ! अभी २ हमारा पर्ययण (वेद अवलोकन, वेद पाठ) का समय समाप्त हुआ है। हम तुम्हारे समक्ष वेदों का मनोहर पाठ कर रहे थे। आज के वेद पाठ में कई प्रकार का विवरण आया। आज हम पूर्व मन्त्रों में उस विधाता का गान गा रहे थे, जिस विधाता ने हमारे जीवन के लिए, हमें ऊँचे कर्म करने के लिये इस संसार रूपी क्षेत्र को उत्पन्न किया। आज हम उस विधाता के गुण गान कहां तक गाएं। वह विधाता मनोहर और अलौकिक है। बड़े बड़े महान् आचार्य-योगीजन उस विधाता के गुण गान करते-करते समाप्त हो गये।

कैसा अद्भुत संसार है यह ? किसने रचा है इसको ? किसने उस विधाता से याचना की कि आप ही इस संसार को उत्पन्न करो।

आज हमें वेद मन्त्रों से प्रतीत होता है कि यह आत्मा ही उस प्रभु से याचना करने गया था। उस प्रभु ने अपने बालक की याचना को पाकर इस संसार रूपी क्षेत्र को उत्पन्न किया। फिर उसने एक एक तत्व में ऐसे ऐसे गुण उत्पन्न किये कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। बेटा ! पृथ्वी को ही देखो ! इसमें नाना गुण हैं। इसमें नित्य प्रति कहाँ से इतने तत्व आ पहुँचे हैं ? स्थावर वृक्ष योनियों में ही देखो ! प्रत्येक वृक्ष अपना अपना रस अपने अपने गुण इस पृथ्वी से ही ले रहा

है। यह कैसा अलौकिक तत्त्व है ? इस पृथ्वी में ऐसे गुण कहां से आ गए हैं ? जिन गुणों की मानव को आवश्यकता है उन गुणों को प्रेरित करने की शक्ति तथा सत्ता किसने प्रदान की है ?

अहा: बेटा ! इससे बड़ा आश्चर्य होता है कि उस विधाता ने अपनी रचना से इस महान् प्रकृति को प्राणरूपी सत्ता (शक्ति) दी। इसी को सामान्य प्राण कहते हैं। मानव के कल्याणार्थ शून्य-प्रकृति को प्राण-सत्ता देकर इसको गतिशील बना कर आत्मा (जीव) को कर्म करने का अवसर दिया।

बेटा ! हमने उस काल को देखा है कि जिस काल में मुनिवरो ! यहां महर्षि पापड़ी मुनि महाराज, अंगिरा मुनि, महर्षि करुण मुनि, कपिल मुनि आचार्य और वशिष्ट मुनि जैसे आचार्य थे। जिस काल में सब महान् माताएं तथा देवकन्याएं अपने एकान्त स्थलों में विराजमान होकर यही सोचा करती थीं कि यह संसार क्षेत्र क्या है ? किसने हमें इतना उच्च कर्म करने का अवसर प्रदान किया ?

आज हमें भी तो यही विचारना है कि हम ज्ञानी विज्ञानी कैसे बनें ? परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान को कैसे जानें ? बेटा ! हमारे आदि आचार्यों ने तथा अन्य माता अरुणा जैसी धर्म-लक्ष्मियों ने इस संसार के तत्त्वों को, परमात्मा के महत्त्वों को प्रकृति के तत्त्वों एवं गुणों के द्वारा (माध्यम से) जाना। बेटा ! हमें प्रतीत होता है कि आज इस सृष्टि में उस परमात्मा की ज्योति ही व्यापक है। उसी की ज्योति से यह संसार प्रकाशित हो रहा है।

वेद-ज्ञान का महत्व तथा उसका मूल-कारण

अहा: कैसा महान् संसार है? कैसा आश्चर्यजनक है? बेटा! उस परमात्मा की विद्या (वेद-ज्ञान) को पाकर हम सुशील बन जाते हैं। वह विद्या कहां से आई? किसने वह विद्या प्रदान की? जिससे मानव का उत्थान हो जाता है। यदि बेटा! आज हम यह मान लें कि यह विद्या प्रकृति से आई, तो बेटा! प्रकृति तो जड़ है, ज्ञान शून्य है। यह तो मानव को शून्यता तक पहुंचाने वाली है।

अहा! तो विद्या कहां से आई? जो मानव का विकास कर देती है। प्रलय काल में यह विद्या किस स्थान पर थी? जिस काल में यह संसार समाप्त हुआ उस समय यह वेद विद्या कहां थी?

आज मानव इसके विश्लेषण पर विचार लगाता है और कई प्रकार से सोचता है। वेदानुयायी महान् आचार्यों की सम्मति पर दृष्टि डालते हैं तो प्रतीत होता है कि परमात्मा इतना पूर्ण ज्ञानी है कि वही जीवात्मा को ज्ञान प्रेरित कर देता है। जीवात्मा उस प्रभु के ज्ञान को पाकर, उसकी वेद वाणी को पाकर यह जीवात्मा बेटा! अनेक प्रकार से ज्ञानी और विज्ञानी बन जाता है। उस ज्ञान-विज्ञान की सहायता से ही आज भी हम अपने जीवन को बहुत उच्च और सफल बनाया करते हैं।

प्रलय काल में वेद ज्ञान कहां रहता है?

प्रश्न होता है कि यह अद्भुत ज्ञान प्रलय काल में कहां रहता है?

प्रलय-काल में यह आत्मा परमात्मा के गर्भ में रहता है। यह वेद-ज्ञान परमात्मा के स्थानों में रहता है। जैसे बेटा! बालक का स्थूल शरीर माता के गर्भ में रहते हुए मानव की दृष्टि-

गोचर नहीं होता। परन्तु जब गर्भ से पृथक् हो जाता है तब उसके चक्षु भी हैं, भुजाएं भी हैं, पद भी हैं, त्वचा भी है, सब इन्द्रियां भी हैं। ये सब उत्पन्न होने पर प्रत्यक्ष होते हैं। इसी प्रकार बेटा! ये सब विद्याएं प्रलय काल में परमात्मा के गर्भ में चली जाती हैं। परमात्मा के पूर्व नियम के अनुकूल परमात्मा में ही निवास करती हैं।

एक समय हमारे आदि आचार्यों ने दार्शनिक समाज में कहा था कि आत्मा का ज्ञान तो प्राकृतिक है। आत्मा का ज्ञान तो स्वाभाविक है। मुनिवरो! यह वाक्य यथार्थ है। आत्मा की दो महान् सत्ताएं (शक्तिएं) स्वाभाविक है। वे हैं एक ज्ञान और दूसरा प्रयत्न। मुनिवरो! आज हम आत्मा की सत्ता (ज्ञान-प्रयत्न) को इस प्रकार मान लें कि वह कहीं से आती है तो बेटा! हमें उस सत्ता के जगाने के लिए इस महान् स्थूल प्रकृति में आकर के किसी से वह ज्ञान लेना पड़ता है। किसी से उसके लिए प्रार्थना करनी पड़ती है। जिससे इस आत्मा को ज्ञान होता है। अज्ञानान्धकार से पृथक् होता है।

जीव के लिए वेद ज्ञान का महत्त्व

मुनिवरो! देखो जैसे भौतिक विज्ञान के खोजने के लिए हमें प्रकृति के नाना तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है। तब हम उस ज्ञान-विज्ञान को खोज पाते हैं इसी प्रकार बेटा! आत्मा का जो ज्ञान स्वाभाविक है उसको जगाने के लिए वेद विद्या का प्रसार करना, वेद विद्या को ग्रहण करना पड़ेगा। जब वेद विद्या की संधि आत्मा में पहुँच जाती है, उस समय बेटा! उस परमात्मा के दिए हुए वैदिक ज्ञान से एक एक महान् सम्बन्ध हो जाने पर मानव जीवन पूर्ण विकास को प्राप्त हो जाता है।

मुनिवरो ! आज के हमारे वेद-पाठ में परमात्मा के दिए इसी उपदेश का वर्णन था। परमात्मा ने हमें वह ज्ञान दिया है कि जिसे पाकर हम उसके उपासक बन जाते हैं, पवित्र बन जाते हैं, उस अमृत को पाकर हम भी वास्तव में अमृत ही बन जाते हैं। तब वहां अमृत-आत्मा आनन्द ही आनन्द भोगता रहता है।

बेटा ! वेद की विद्या पाकर हम सुशील बन जाते हैं सुशील (सभ्य) बन कर ही हम दार्शनिक समाजों में जाकर वहां नाना प्रकार के प्रश्न कर सकते हैं और हम उन प्रश्नों के उत्तर भी उन ऋषियों और दार्शनिकों से पाने वाले बन जाते हैं।

जीवन के विकसित जीवन को सामर्थ्य और अहंकार का नाश तथा संसार की उत्पत्ति का रहस्य

मुनिवरो ! हमारे कर्म करने के लिये संसार रूपी क्षेत्र को उत्पन्न करने वाले विधाता से याचना करते हुए हम कर्म करने के लिये उद्यत हो रहे हैं। हमारे आदि आचार्यों ने मानव जीवन की विकासशीलता का अनेक स्थानों पर वर्णन किया। इसी को कल हम अपने व्याख्यान में कह चुके हैं।

महामुनि नारद ने अपने जीवन का पूर्ण विकास किया था। नारद मुनि की विशेषता थी कि वह अपनी तपस्या एवं पुरुषार्थ के बल से सूर्य-मण्डल में पहुँचे तथा वहां के राजा विष्णु को इस पृथ्वी पर खींच लिया। नारद मुनि ने अपनी तपस्या एवं पुरुषार्थ के प्रभाव से महाराजा विष्णु का अभिमान नष्ट कर दिया। बेटा ! जो भी मानव अभिमान से

कार्य करता है, उसका एक न एक दिन पतन अवश्य होता है। वह पार्थिव रूप जड़ता को प्राप्त हो जाता है। आज हमें इसका ध्यान रखना चाहिये। हमें अपनी तपस्या और पुरुषार्थ के द्वारा सफलता मिलने पर भी थोड़ा भी अभिमान नहीं करना चाहिये।

हमारे वेद मन्त्रों में अनेक स्थानों पर वर्णन आ रहा है कि यह महान् संसार उस परमात्मा को पाने के लिये बनाया है। इसलिये हमको बहुत अधिक महत्ता की आवश्यकता है।

ब्राह्मण किसे कहते हैं ?

मुनिवरो ! देखो, "ब्राह्मण वर्चति" इत्यादि आज के वेद-पाठ में नाना प्रकार से ब्राह्मणों का वर्णन आ रहा था। इन मन्त्रों में ब्राह्मण किसको कहते हैं ? संसार में ब्राह्मण की क्या विशेषता है ? बेटा ! ब्राह्मण कहते हैं ज्ञानी को। प्रत्येक जीवन-यात्री को, प्रत्येक देवकन्या को ज्ञान देकर अमृत तुल्य बना देने में सहायता करने वाले को ब्राह्मण कहते हैं। उसी को बेटा ! यहां ब्राह्मण उपाधि दी जाती है।

बेटा देखो ! ब्राह्मण तो सूर्य को भी कहते हैं। ब्राह्मण नाम परमात्मा का भी है। देखो ! यहां सूर्य को ब्राह्मण क्यों कहते हैं ? सूर्य प्रातःकाल आते हैं। तीनों लोकों को तपायमान कर देते हैं। ये तीनों लोक उसके महान् प्रताप से, तेज से प्रकाशमान हो उठते हैं। देखो बेटा ! इसी प्रकार ब्राह्मण उसी को कहते हैं जो प्रकाश देने वाला हो। बेटा ! प्रकाश भी कई प्रकार के होते हैं। एक 'अनुमन्तृ' प्रकाश होता है। जो परमात्मा की महामाया (प्रकृति) से पृथक् होता है। प्राकृतिक ज्ञान मधुमान (क्लिष्ट) होता है, बेटा ! यह ज्ञान वेदों के

व्याख्यानों से प्राप्त होता है।

आत्मा का प्रकाश भी परमात्मा का दिया हुआ है। देखो। परमात्मा हमारी आत्मा में बैठा हमें प्रकाशित कर रहा है। उसी को बेटा! ब्राह्मणों का ब्राह्मण कहा जाता है। अहा: ब्राह्मण उसी को कहते हैं जो प्रकाशमान होता है।

बेटा! जैसे हमारे शरीरों में मल, विक्षेप तथा आवरण हैं। इन तीनों को अपनी विद्या से समाप्त करने वाले को ही हमारे आचार्यों ने ब्राह्मण माना है, जो राष्ट्र को ऊंचा बनाने वाला हो, एक साधारण व्यक्ति का भी उत्थान करने वाला हो और जो वेदों के ज्ञान का भण्डार हो उसी को ब्राह्मण रूप से पुकारा जाता है। मुनिवरो! इसका वर्णन तो हम अपने पूर्व के व्याख्यानों में कर चुके हैं।

बेटा! अभी अभी हम उच्चारण कर रहे थे कि "ब्राह्मण वर्चति" इत्यादि। देखो, जो ब्राह्मण सब गुणों वाला बन जाता है उसी को तेजस्वी ब्राह्मण कहा जाता है।

एक समय नारद मुनि ने दार्शनिक समाज में कहा था कि यदि ब्राह्मण को 'परायश' मान लिया जाय तो क्या हानि है। तब आदि ऋषियों में से अंगिरा ऋषि ने कहा था कि अरे! देवऋषि नारद हम यह नहीं मान सकते। यदि हम ब्राह्मण को 'परायश' (परा विद्या से प्राप्त यश वाला ?) मान लेवें तो उसमें नाना प्रकार की हानि हो जायगी। राष्ट्र अन्धकार में चला जायगा। ऐसा मानने से हम परमात्मा के बनाए हुए नियमों को व्यर्थ करने का दुस्साहस और पाप करेंगे। समाज

तुच्छ बन जायगा। राष्ट्र की समस्त प्रजा और यह संसा
तुच्छता को प्राप्त कर अधोगति को पहुँच जाएगा।

हे नारद ! हमें तो उस व्यवस्था को पाना है कि जिसे
हम हर प्रकार से योगी बनकर, महान् बनकर अपने ब्राह्मणे
को महान् ज्ञान देते चलें। जिससे तुच्छता का प्रसार न हे
सके। तुच्छता के प्रसार से तो यह संसार अधोगति को प्राप
हो जायगा।

गुरु जी ! आज आपका कुछ "विश्वाय परसन्तु (परय
रूपायनम अस्तु।" हास्य.........।

बेटा ! हो जाता है कोई ऐसी बात नहीं। क्योंकि "नि
भूमि अमृति विषयम्।" और आपत्ति काल में शब्द वि
(बलिष्ठ) बन जाता है।

गुरु जी ! आप ऐसा न कीजिये। इससे महत्व समा
हो जायगा।

चलो बेटा ! कोई बात नहीं।

अच्छा ! कृपा कीजिये।

ब्रह्मचारी जी के व्याख्यान में पुनरुक्ति का कारण

तो मुनिवरो ! अभी अभी महानन्द जी अपने प्रश्न
समय में कह रहे थे कि हम किसी किसी बात
को द्वितीय बार उच्चारण कर देते हैं। इसका मुख्य कार
यह है कि हम आपत्ति काल में हैं। इसलिये बिना इच्छा
भी यह हो ही जाता है। आपत्ति काल वश इस पर नियन्त्र
नहीं हो पाता। अन्यथा हमारे द्वारा किसी वार्ता के बार
प्रकाश होने का कोई कारण नहीं।

देखो हमने पूर्व काल में बहुत सी निधियों को पाया। वे आज सूक्ष्म (क्षीण) होती जा रही हैं। उन निधियों से अब हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो पा रहा है। अब तो केवल वह महान् शब्द रूप में अन्तरिक्ष में विराजमान है। अन्तरिक्ष को वह शब्द शुद्ध बना रहा है।

अहा: देखो! आज हमारे वेद पाठ में कई स्थानों पर तेजस्वी ब्राह्मण का वर्णन आ रहा था। वह तेजस्वी ब्राह्मण सबका कल्याण करने वाला होता है। प्रजा को उच्च बनाने वाला होता है। प्रजा में किसी प्रकार के अज्ञान को छाने नहीं देता। जिस काल में ऐसे ब्राह्मणों की संख्या अधिक होती है, उस काल में अज्ञान आता ही नहीं है। मुनिवरो देखो! ऐसे महान् ब्राह्मण राजाओं को समय पर चेतावनी देने वाले हों। अजय-मेध-यज्ञ को कराने वाले हों।

'अजय-मेध-यज्ञ' अथवा 'अजा-मेध-यज्ञ'

बेटा! 'अजय-मेध-यज्ञ' किसको कहते हैं? अजय शब्द के माता, पृथ्वी, यज्ञ, राष्ट्र और प्रजा अर्थ होते हैं। 'मेध' शब्द के यज्ञ और राजा अर्थ होते हैं। 'अजा' शब्द के बकरी तथा वेदी अर्थ होते हैं। ब्राह्मण जन वेदी को सजाया करते हैं। यज्ञ को पूर्ण समारोह के साथ करते हैं।

राजा अपनी धर्मपत्नी के साथ राष्ट्र के उत्थान करने में सदा लगा रहे। राष्ट्र के उत्थान के लिए राजा अपनी धर्मपत्नी के साथ 'अजय-मेध' करता रहे। यह उसका परम कर्त्तव्य है।

अजा नाम पृथ्वी का है। बेटा! जिस काल में वैज्ञानिक-जन एकान्त स्थान में विराजमान होकर पृथ्वी के तत्त्वों को विचारते हैं नाना प्रकार के अनुसन्धान करके उस भौतिक विज्ञान को

पाते हैं तब महान् ! उसको ! 'अजा-मेध-यज्ञ' कहते हैं।

मुनिवरो ! देखो, 'गो-मेध-यज्ञ' भी होता है। 'गो' नाम से पृथ्वी और इन्द्रियां दोनों को लिया जाता है इन्द्रियों के द्वारा विषयों का तथा पदार्थों के गुणों का ज्ञान होता है। पृथ्वी का मुख्य गुण गन्ध है। आज गन्ध को जानना है। गन्ध कहां से आती है ? किस स्थान से प्रकट होती है ? कौन २ से तत्त्वों से मिलकर बनती है ? मुनिवरो ! इसका जानना ही 'गो-मेध-यज्ञ' कहाता है।

आज हमारे वेद पाठ में 'अजय-मेध-यज्ञ' का वर्णन आ रहा था। आज हमें अजय-मेध-यज्ञ करने का संकेत मिला। 'अजय' के नाना अर्थ हैं। इसलिए आज हमें विचार कर निश्चय करना चाहिए कि प्रसंग के अनुसार जिस शब्द के जिस अर्थ की आवश्यकता हो उसी का ग्रहण आवश्यक है। उसी का प्रयोग अनिवार्य है। अन्य अर्थ का नहीं। उसी से मानव का विकास होगा। उसी से मानव का आत्मा उच्च बनेगा। अन्यथा नहीं।

बेटा ! देखो, अभी अभी प्रसंग चल रहा था कि राजाओं का क्या उद्देश्य है ? राजाओं को कैसा यज्ञ करना चाहिए ? अर्थात् उनको 'अजय-मेध-यज्ञ' अथवा 'अजा-मेध-यज्ञ' करना चाहिए। देखो, बेटा ! अजा नाम प्रजा का है। मेध नाम राजा का है। दोनों का सम्बन्ध करके यज्ञ किया जाय, उसी यज्ञ को यहां 'अजा-मेध-यज्ञ' कहा जाता है। बेटा ! देखो जैसे महाराजा राम ने त्रेता काल में किया था। राजा रावण ने उस यज्ञ का ब्रह्मा बन करके यज्ञ को पूर्ण किया।

बेटा ! देखो, मेध नाम आत्मा का भी है। अजा नाम इसकी

प्रजा का है। आत्मा का सम्बन्धी आत्मा का परिवार है। बेटा! देखो, अन्तःकरण, चित्त, बुद्धि और अहंकार यह सब आत्मा का परिवार है। ये ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां भी आत्मा के ही परिवार हैं। इस महान् परिवार को कौन चलाने वाला है? जब हम आत्मा को और उसके परिवार को भली प्रकार से जान जाते हैं तब हम स्वतः ही उस महान् राजा को जान लेते हैं। उस मेध को जान लेते हैं। तब हम आत्मा तत्त्व के जानकार बन जाते हैं। इसी प्रकार जो राजा अजा-मेध-यज्ञ करने वाले होते हैं वे प्रजा के भावों को जान लेते हैं। साथ में राष्ट्र के ब्राह्मणों की परीक्षा हो जाती है कि मेरे राष्ट्र में कैसे-कैसे बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं?

मुनिवरो! इस समय सत्य-युग के काल की एक वार्ता हमारे कण्ठ (स्मरण) आ गई है। हम उसका उच्चारण करेंगे। उसके पश्चात् हमारी वार्ता समाप्त हो जायगी।

मुनिवरो! सत्ययुग में अटुल मुनि महाराज महीयस् राजा के महान् पुरोहित थे। एक समय राजा अपने राज-स्थान में विराजमान थे। न्यायालय में प्रजा का न्याय कर रहे थे। बेटा! उस समय उनके हृदय में विचार आया कि हमें "अजय-मेध-यज्ञ" (अजा-मेध-यज्ञ) करना चाहिए।

अजा-मेध-यज्ञ किसके लिए करना चाहिए? प्रजा के लिए करना चाहिए। जिससे हमारी प्रजा महान् बने। जिससे हमारी प्रजा में सदाचार हो। प्रजा के ज्ञान विज्ञान की वृद्धि हो। हमारे राष्ट्र में वेदों का प्रसार हो। प्रत्येक गृह में यज्ञ हों। यजन से हमारे राष्ट्र का वातावरण सुगन्धि दायक हो। यजन से राष्ट्र सुगन्धि दायक बनेगा।

बेटा ! राजा के मन में इस विचार के आने के पश्चात् राजा ने अपने मन में संकल्प-विकल्पों द्वारा बड़ा अनुसन्धान किया। इस विचार को लेकर राजा अपने गुरु पुरोहित के समक्ष आ पहुंचे। अटुल-मुनि महाराज ने राजा का बड़ा स्वागत करके कहा "प्रिय ! आनन्द हो ?

राजा ने उत्तर में कहा "विशेष आनन्द है।"

अच्छा, धन्यवाद। कैसे आगमन हुआ ?

उन्होंने कहा—भगवन् ! हम इसलिए आए हैं कि इस काल में हमारी एक अजय-मेध-यज्ञ (अजा-मेध-यज्ञ) करने की इच्छा है। जिससे हमारी प्रजा श्रेष्ठ बने। हमारी प्रजा में महत्ता आए।

"अजय-मेध-यज्ञ" या अजा-मेध-यज्ञ का कौन अधिकारी

मुनिवरो ! देखो राजा की इन वार्त्ताओं को सुनकर अटुल मुनि महाराज ने बहुत प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हारी इस वार्त्ता को सुनकर तथा निष्ठा एवं योग्यता को देखकर हमें निश्चय हो गया कि तुम "अजा-मेध-यज्ञ" करने में अवश्य सफल हो जाओगे। परन्तु वेद विद्या कहती है और परम्परा भी यही बतलाती है कि अजय-मेध-यज्ञ (अजा-मेध-यज्ञ) करने का उसी राजा को अधिकार है कि जिसकी प्रजा में एक दूसरे का कोई भी ऋणी न हो। हमको पता नहीं है कि तुम्हारी प्रजा में क्या सभी ऋण मुक्त हैं ? पहले तुम इसका अनुसन्धान कीजिए।

अच्छा ! देखो, मुनिवरो ! इन वाक्यों को पा करके राजा अपने कर्त्तव्य तथा भविष्य के कर्त्तव्य पर विचारने लगे।

बेटा ! राजा ने गुरु देव की आज्ञा पा करके कहा कि मैं

राज्य में भ्रमण करके देखूंगा कि मेरी प्रजा में एक दूसरे का ऋणी तो नहीं है! बेटा! राजा वहां से चलकर अपने राष्ट्र में पहुंचे। विचार करते प्रजा में भ्रमण करके देखा कि प्रत्येक गृह में नित्य प्रातः काल यज्ञ हो रहे हैं। राष्ट्र में एक दूसरे का कोई ऋणी नहीं था। प्रजा सब प्रकार कुशल से है। प्रजा में बड़ा आनन्द छा रहा है। महान्! देखो, पिता की सेवा करने वाले पुत्र हैं उनको योग्य बनाने के लिए भी माता-पिता भी कुशल हैं। राजा ने देखा कि उसके द्वारा बनाए गए नियम राष्ट्र में बड़े आनन्द से चल रहे हैं। देखो, क्षत्रिय राष्ट्र की रक्षा कर रहे हैं।

राजा अपने राष्ट्र की ऐसी स्थिति और कुशलता को देख कर बड़ी प्रसन्नता के साथ चलकर राजपुरोहित गुरु के समक्ष जा पहुंचे। गुरु से कहा कि भगवन्! मेरे राज्य में तो बहुत कुशल है। मेरे राष्ट्र में कोई किसी का ऋणी नहीं है। मेरा राष्ट्र सब प्रकार से महान् है।

यज्ञ में धर्मपत्नी का महत्त्व

उस समय राजा की इन वार्त्ताओं को पाकर ऋषिवर बड़े प्रसन्न होकर बोले कि भाई! अजय-मेध-यज्ञ (अजा-मेध-यज्ञ) करो। परन्तु यज्ञ करने से पूर्व तुम अपनी धर्मपत्नी से अनुमति लेकर आओ। वह तुम्हें अनुमति दे तो अवश्य यज्ञ करो। अन्यथा तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

उस समय बेटा! राजा वहां से चलकर राजगृह में जा पहुंचे। राजा के पहुंचते ही पत्नी ने चरणों को स्पर्श किया। नमस्कार करके राजा का बड़ा स्वागत किया। आसन पर विराज-मान करके धर्म-पत्नी ने कहा-कहिए भगवन्! आपका मन कैसे

भ्रमित हो रहा है ? इसका क्या कारण है । आज हमको प्रतीत हो रहा है कि आपको किसी प्रकार का शोक है या किसी प्रकार की विशेष अशान्ति है ।

उस समय राजा ने कहा कि हे धर्मपत्नी ! मेरे मन में कोई शोक नहीं है । मेरा मन इसलिए भ्रमित है कि मैं अजय-मेध-यज्ञ करने जा रहा हूं । राजगुरु पुरोहित ने कहा है कि तुम अपनी धर्मपत्नी की अनुमति लेकर यज्ञ करो । तो तुम्हारी क्या इच्छा है ।

अहा ! उस समय बेटा ! वह धर्मपत्नी बड़ी मग्न हो गई । देखो बेटा ! उसके हृदय के कपाट खुल गए । बेटा ! हृदय में ज्योति जागने लगी । धर्मपत्नी ने कहा—भगवन् ! अच्छा, मेरे ऐसे भाग्य कहां हैं कि भगवन् ! आप यजमान बनकर अजय-मेध-यज्ञ (अजा-मेध-यज्ञ) रचावें, देवताओं को हम कुछ देवें । जिससे हमारे राष्ट्र का उत्थान होवे । यह तो भगवन् ! बहुत सुन्दर विचार है ।

मुनिवरो ! देखो, धर्मपत्नी से अनुमति लेकर राजा ने वहां से चलकर ऋषिवर के समक्ष जाकर कहा-भगवन् ! मेरी धर्मपत्नी बड़ी ही प्रसन्न है । उसका वाक्य है कि हमारे ऐसे सौभाग्य कहां ? उसका हृदय मुग्ध होने लगा । ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके हृदय में धर्म की अग्नि प्रज्वलित हो रही हो ।

यज्ञ-वेदी की सजावट क्यों

बेटा ! उस समय ऋषिवर ने इन वाक्यों को पाकर के नाना ब्राह्मणों को निमंत्रण देकर वहां एक विशाल यज्ञ रचाया । वहां बड़ी सुन्दर यज्ञशाला रचाई गई । यज्ञ शाला के रचने से मानों वहां अक्षय आनन्द छा गया । नाना प्रकार की चित्र-

कारियों से वह यज्ञशाला रचाई गई। सब देवताओं के स्थान बनाए गए। अहा! वेदी वही होती है जिसे बेटा! ब्राह्मण बुद्धिमत्ता के साथ वेद के अनुकूल रचाता है। अहा! उस समय बेटा! महर्षि जी से राजा ने प्रश्न किया कि भगवन्! यह यज्ञ-शाला क्यों रचाई जाती है? इसका क्या कारण है कि इतनी चित्रकारी की जाती है? बेटा! तब ऋषि ने उत्तर दिया कि देखो, जैसे परमात्मा ने इस संसार रूपी यज्ञ को उत्पन्न किया है। उसको इतनी चित्रकारियों से सजाया है ऐसे ही देखो, हम छोटे से वैज्ञानिक हैं। परमात्मा के बालक हैं। परमात्मा जैसे यज्ञ तो नहीं रचा सकते। उसके बालक जैसा यज्ञ रचा सकते हैं। हम तो उनका सूक्ष्म सा रूप ले रहे हैं कि जो चित्रकारियों से इस यज्ञशाला को रचाया है। मुनिवरो! देखो, ऋषिवर ने जब यह उत्तर दिया तो राजा बड़े मग्न हो गए। मग्न होकर कहा धन्यवाद। बेटा! उसके बाद वहां नाना प्रकार की सामग्री एकत्रित हो गई। सब शाकल्य एकत्रित हो गया। प्रजा को निमंत्रण दिया गया। मुनिवरो! देखो, यजमान, यजमान की धर्मपत्नी वहां यज्ञशाला में विराजमान हो गए। देखो, वहां शुनि मुनि महाराज, पापड़ी मुनि महाराज, दोनों उस यज्ञ के उद्गाता बने। अटलमुनि महाराज, उस यज्ञ के अध्वर्यु बने। तत्त्व मुनि महाराज उस यज्ञ के ब्रह्मा बने। इसके अनन्तर यज्ञ आरम्भ हो गया। बेटा! ब्रह्मा के ऊपर यज्ञ का भार होता है। ब्रह्मा ने विधिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करा कर समुद्र की क्रिया आरम्भ की। जब वहां समुद्र की क्रिया हो रही थी, उस समय पापड़ी ऋषि महाराज, आ पहूंचे।

अधिकारी से ही यज्ञ कराने का विधान

बेटा ! उस काल में वहां शोलक ऋषि आदि ऋषियों का एक दार्शनिक समाज विराजमान था। दार्शनिक समाज में पापड़ी ऋषि को नियुक्त किया गया कि जाओ परीक्षा करो कि वे कैसे बुद्धिमान् हैं ? राजा अजय-मेध-यज्ञ (अजा मेध-यज्ञ) के अधिकारी हैं या नहीं ? यदि नहीं हैं तो यज्ञ में कहना चाहिए कि तुम अजय-मेध-यज्ञ के अधिकारी नहीं हो। तो मुनिवरो ! उस समय बेटा ! महर्षि पापड़ी मुनि जी उस दार्शनिक समाज से वहां जा पहुंचे।

यज्ञ के समस्त कर्मकाण्ड का महत्त्व

यज्ञ में जल सिञ्चन क्यों ?

जिस समय तत्त्व मुनि जी उस यज्ञ के ब्रह्मा जल सिंचन करा रहे थे उस समय पापड़ी ऋषि ने प्रश्न किया कि महाराज ! यह जल सिंचन क्यों हो रहा है ? यह क्या क्रिया है ? और क्या पदार्थ है ?

अहा बेटा ! उस समय ऋषिवर ने उत्तर देते हुए कहा कि यह महान् समुद्र है जैसे परमात्मा ने इस महान् संसार को उत्पन्न किया है। उसके मध्य में पृथ्वी बनी हुई है। ऐसे ही यह वेदी नाम की पृथ्वी है। देखो वेदी नाम पृथ्वी का है। इसके आस पास ही यह समुद्र बना हुआ है। उस परमात्मा द्वारा उत्पन्न आकर्षण शक्ति, उसकी महान् विद्युत् के आधार पर यह पृथ्वी स्थित है।

इसलिए आज देखो। हम यजमान देवताओं का शाकल्य बनाने के लिए उन समुद्रों के विश्लेषणात्मक दृष्टि से उनके

स्वरूप को समझ कर उसके गुणों से लाभ उठाते हुए वेद के अनुकूल इस वेदी का कर्मकाण्ड कर रहे हैं। मुनिवरो ! तब ऋषि जी बड़े आनन्द के साथ विराजमान हो गए। यज्ञ आरम्भ होने लगा। महर्षि पापड़ी ने सोचा कि ब्रह्मा तो वास्तव में योग्य है। तब उन्होंने ब्रह्मा से प्रश्न किया कि भगवन् ! यज्ञ क्यों रचाया गया है ? आपका क्या कर्त्तव्य है ?

यज्ञ में ब्रह्मा का कर्त्तव्य—मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण का प्रयोजन

उस समय ब्रह्मा ने कहा कि मेरा कर्त्तव्य है कि मैं यह देखूं कि यज्ञ का कोई उद्‌गाता वेद मन्त्र तो अशुद्ध उच्चारण नहीं कर रहा। यदि यज्ञशाला में वेद मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण हो गया तो बड़ा पाप होगा। वह पाप क्या हो जायगा ? क्योंकि जिस वेद वाणी के द्वारा हम जिन देवताओं का आह्वान करके उनका स्वागत कर रहे हैं, यदि वही वेद वाणी अशुद्ध होगी तो देवता हमारे समक्ष क्यों आयेंगे ? जैसे लोक में जब बुद्धिमान् व्यक्ति हमारे समक्ष आते हैं और हम बुद्धिपूर्वक उनका स्वागत नहीं करते हैं। हम मूढ़ बुद्धि से स्वागत करते हैं तो वे बुद्धिमान् हमारे समक्ष आना त्याग देते हैं। ऐसे ही वेद मन्त्रों के यज्ञ-वेदी पर अशुद्ध उच्चारण से देवता हमारी उपेक्षा कर देंगे। तब यह सब कर्मकाण्ड निष्फल हो जायगा। इसी प्रकार मुनिवरो ! वेद मन्त्रों के यज्ञ में यज्ञ वेदी पर शुद्ध उच्चारण का अभिप्राय है।

जिन देवताओं को शाकल्य देना है हम उन्हीं देवताओं का शुद्ध मन्त्रपाठ के द्वारा आह्वान कर रहे हैं, उन्हीं से याचना कर रहे हैं। यदि मन्त्रोच्चारण अशुद्ध हुआ तो देवता हव्य

पदार्थों को कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। परिणाम यह होगा कि वे हमारे संसार का कदापि कल्याण नहीं करेंगे।

मुनिवरो! महर्षि पापड़ी जी इन वार्त्ताओं को पाकर बड़े मग्न हो गए। उन्होंने आनन्द में मग्न होकर कहा कि अहो-भाग्य है कि जहां ऐसे ब्रह्मा हों तथा जहां इतनी विद्वत्ता के साथ वेदों के मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध होता है।

यज्ञ में उद्गाताओं का कर्त्तव्य

मुनिवरो! इसके पश्चात् पापड़ी ऋषि उद्गाताओं के समीप पहुंच कर बोले—हे उद्गाताओ! तुम जो वेदों का पाठ कर रहे हो इसका क्या अभिप्राय है? यह क्यों कर रहे हो?

उद्गाताओं ने उत्तर दिया कि भगवन्! यह हमारा कर्त्तव्य है कि वेदों के मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण पूर्वक पाठ करके वेदों की विद्याओं का प्रसार करें। हमारी आत्मा का उत्थान हो और हम देवताओं में रमण करें। वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के साथ यजन करते हुए शाकल्य तथा हव्य-पदार्थों को देवताओं के समक्ष प्रस्तुत करके देवताओं से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे देवताओ! आइये, हमारे शाकल्यों को, इन हव्य पदार्थों को ग्रहण करो। भगवन्! हमारे लिये प्रत्येक प्रकार से कल्याण कारी बनो।

मुनिवरो! देखो, तब ऋषिवर ने सोचा कि भाई! यह उद्गाता भी बड़े बुद्धिमान हैं।

यज्ञ में अध्वर्यु का कर्त्तव्य

इसके पश्चात् पावड़ो ऋषि महाराज अध्वर्यु (महर्षि अटुल मुनि महाराज) के समक्ष पहुंच कर बोले कि हे भगवन् ! आप नाना प्रकार को सामग्री एकत्रित करके यजन करते हुए देवताओं को शाकल्य दे रहे हैं, वह क्यों दे रहे हैं ? इसका क्या अभिप्राय है ?

यज्ञ में सामग्री की शुद्धता का महत्त्व

उन्होंने उत्तर दिया कि यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं शुद्ध रूप से देवताओं को शुद्ध सामग्री दूं। जिससे कि देवताओं का आहार शुद्ध हो। यदि देवताओं का आहार शुद्ध होगा तो हमें देवताओं से श्रेष्ठ प्राण-सत्ता मिलेगी।

महान् ! देखो, आज हमें वह महत्ता प्राप्त करनी चाहिए कि जिससे हमारा जीवन, राष्ट्र का जीवन, संसार के मानव का जीवन उच्च बने और विद्या का प्रसार हो।

वेदों के अनुकूल बनी सामग्री की आहुतियां देने से देवता उसको स्वीकार करते हैं।

यज्ञ में यजमान द्वारा दी गई आहुतियों का महत्व तथा यजमान की भावनाओं का स्वरूपः—

मुनिवरो ! इन वार्त्ताओं को पाकर ऋषिवर यजमान के समक्ष जा पहुँचे और बोले कि "हे यजमान ! तुम जो ये आहुतियां दे रहे हो इनका क्या अभिप्राय है ?

बेटा ! राजा ने कैसा उत्तर दिया ? राजा ने कहा बेटा ! हे ऋषिवर ! हम आहुति देने के साथ-साथ प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभु ! आपने हमारे राष्ट्र को तथा इस सारे संसार को

उत्पन्न किया है। हे विधाता! हे देवताओ! हमारे राष्ट्र में शुद्ध ज्ञान प्रकाश हो, सद्भावनाओं वाले व्यक्ति हों, जिससे हमारे राष्ट्र में घृत-दाता पशुओं की हानि न हो। हे भगवन्! यदि हमारे राष्ट्र में गौओं की हानि हो जाएगी तो मेरा राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट हो जाएगा। हे विधाता! हे देवताजनो! मैं इस सद्भावना पूर्वक आहुति दे रहा हूं कि हमारे राष्ट्र में पशुओं की वृद्धि हो तथा मेरा राष्ट्र प्रत्येक प्रकार से विशाल हो।

यजमान की धर्मपत्नी का कर्त्तव्य एवं भावनाएं

मुनिवरो! यजमान से इस प्रकार वार्त्ता सुनकर ऋषिवर ने यजमान की धर्मपत्नी के समक्ष पहुंचकर कहा कि हे धर्म देवी! तुम्हारी आहुति देने का क्या मन्तव्य है? उस समय धर्म देवी ने कहा कि हे ऋषिवर! आप तो बड़े बुद्धिमान् हैं, आप ऐसे वाक्य क्यों उच्चारण कर रहे हैं? जो कि आपके योग्य नहीं हैं। तब ऋषिवर ने कहा कि आप भी अपना कुछ विचार तो उच्चारण कीजिए। उस समय धर्मदेवी ने कहा कि हे विधाता! मैं मन के इस संकल्प के साथ आहुति देती हुई याचना कर रही हूं कि "हे देव! हे परमात्मन्! हम शुभ कार्य करते रहें। मेरे स्वामी के राष्ट्र में शुभ कार्य होते रहें, अशुभ कार्य न हों। मेरे स्वामी के राष्ट्र में कोई भी मानव, कोई भी देव-कन्या दुराचारी न हो। हे भगवन्! हे ऋषिवर! जिसके राष्ट्र में देव कन्याएं या पुरुष दुराचारी हो जाते हैं उस राजा का राज्य आज नहीं तो कल अवश्य समाप्त हो जायगा। हे भगवन्! मेरी यह प्रार्थना है कि प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मानव उच्च विचार वाला महान् सदाचारी हो जिससे मेरे स्वामी का राष्ट्र

एक विशाल राष्ट्र बने और ऐसे धर्म के कार्य प्रत्येक स्थानों

में होते रहें जिससे राष्ट्र में बुद्धिमानों का प्रसार हो। बिना वेद के प्रचार के राष्ट्र के मानवों में कभी सात्विक बुद्धि नहीं आती है।"

मुनिवरो ! जब ऋषिवर ने इन वाक्यों को पाया तो ऋषि चकित हो गए। ऋषि जी ने कहा कि यह तो वास्तव में 'अजय-मेध-यज्ञ' (अजा-मेध-यज्ञ) करने के अधिकारी हैं।

यज्ञ में ऋत्विजों का कर्त्तव्य

इसके पश्चात् ऋषि आहुतियां देते हुए ऋत्विजों के समक्ष पहुंचे। ऋषि ने ऋत्विजों से प्रार्थना की कि "भगवन् ! आप लोग जो ये आहुतियां दे रहे हैं, इसका क्या अभिप्राय है ? आहुतियां क्यों दी जा रही हैं ? आपका क्या मन्तव्य है ?

उस समय ऋषिवर के वाक्यों को पाकर के ऋत्विजों ने कहा कि "भगवन् ! हम याचना कर रहे हैं कि 'हे विधाता ! हमारे में जो दुर्गुण एवं दुर्गन्धियां हैं उनको समाप्त करके हमारे में सुगन्धि प्रविष्ट करें। अहा ! जब हमारा जीवन सुगन्धि दायक बनेगा, तब हमारा जीवन महान् बनेगा। हम राष्ट्र के तथा संसार के हितैषी बनेंगे। हे विधाता ! हम हर प्रकार से हितैषी बन कर संसार को सुख पहुँचा कर देवताओं के समक्ष पहुंचें।"

मुनिवरो ! ऋषिवर इन वाक्यों को पाकर शान्त हो गए।

यज्ञ में समिधाओं एवं सामग्री के महत्त्व का आलंकारिक रूप में वर्णन

मुनिवरो ! यह तो यथार्थ में यज्ञ का वर्णन था। आगे आलंकारिक वर्णन आता है।

यज्ञ में समिधाओं की महत्ता

मुनिवरो ! ऋषि जी महती समिधाओं के समक्ष पहुंचे और समिधाओं से कहा कि हे समिधाओ ! यह क्या हो रहा है ? तुम अग्नि में प्रविष्ट हो रही हो और अग्नि तुम्हें नष्ट कर रही है। तुम अग्नि का आहार बन रही हो। इससे तुम्हारा क्या मन्तव्य है ?

बेटा ! देखो, उस समय समिधाओं ने कहा कि हे विधाता ! संसार में वही मानव सुख पाता है जो किसी का बन जाता है। देखो ऋषि जब ही बनता है जब गुरु की शरण में चला जाता है। गुरु उसके दुर्गुणों को नष्ट कर देते हैं। अग्नि-विद्या को धारण करा देते हैं। तभी देखो, वह ऋषि बनता है। इसी प्रकार विधाता ! हम अग्नि रूप गुरु के समक्ष जाकर अपने पार्थिव परमाणुओं को समाप्त करके अपने सूक्ष्म रूप को धारण करके सूर्य-मण्डल तक पहुँच कर देवताओं की शरण में चली जाती हैं। देखो ! महान आदित्य हमको धारण करके आहार करके, महान् ! धीमी-धीमी किरणों के द्वारा समुद्रों में पहुंचा देते हैं। समुद्रों से मेघ के रूप को धारण करके वृष्टि द्वारा पृथ्वी पर आ जाती हैं। देखो, पृथ्वी पर स्थावर सृष्टि के रूप में उत्पन्न होकर हम संसार का कल्याण करती हैं।

यज्ञ में सामग्री की महत्ता

मुनिवरो ! देखो, ऋषि जी उनके युक्ति-युक्त उत्तर से सन्तुष्ट होकर सामग्री के समक्ष पहुंचे। उन्होंने सामग्री से प्रश्न किया कि तुम यह क्या कर रही हो ? तुम अग्नि के समक्ष जाकर उसमें क्यों भस्म हो रही हो ? इससे तुम्हारा क्या अभिप्राय है। तुम्हें इसमें क्या लाभ प्रतीत होता है ?

सामग्री का वैज्ञानिक लाभ

उस समय उस महती सामग्री ने कहा था कि हे विधाता ! नाना प्रकार की वस्तुओं को एकत्रित करके हमको बनाया गया है। इसके अनन्तर हमको अग्नि के अर्पण कर दिया जाता है। अग्नि हमको भस्म कर देती है। हमारा सूक्ष्म रूप बनकर अन्तरिक्ष में आदित्य में पहुँच जाता है। जब हम आदित्य में रमण करती हैं, तब आदित्य हमें बल देता है। महान् ! देखो, उस बल से किरणें उत्पन्न होती हैं जो समुद्रों में जाती हैं। समुद्रों से जल का उत्थान होता है, जल से मेघ बन जाते हैं। मेघों से वृष्टि होती है। वृष्टि से पृथ्वी पर नाना प्रकार की समिधाएं तथा नाना प्रकार की सामग्रियां उत्पन्न हो जाती हैं।

ज्ञानाग्नि में स्नान करने पर जीव के जीवन की सफलता

संसार में उसी का जीवन उच्च है जो किसी का हो जाता है। जो किसी का नहीं होता वह संसार में अधूरा बना बैठा रहता है। देखो, जब तक ज्ञान रूपी अग्नि में आत्मा ने स्नान नहीं किया, अपने दोषों को भस्म नहीं किया, तब तक आत्मा परमात्मा से विमुख ही रहता है। भगवन् ! इसी प्रकार जब तक हम अपने मन को अग्नि में भस्म न कर देंगे, तब तक

हमारा यथार्थ रूप देवताओं के समक्ष नहीं आयेगा, तथा तब तक हम संसार का कोई उपकार न कर सकेंगे। यदि हम उपकार न कर सके तो हमारा जीवन निष्फल है।

तो मुनिवरो! देखो, यह है हमारा आज का आदेश जो हो रहा था। मुनिवरो! देखो, यह कैसा सुन्दर वाक्य आज हमारे वेद-पाठ में आया। इस पर सत्ययुग की कैसी सुन्दर वार्ता हमारे कण्ठ में आ गई।

आज के हमारे आदेशों का अभिप्राय क्या है?

अच्छे, ब्राह्मण कैसे हों?

(१) यथार्थ विद्या के खोजी हों।

(२) सब की परीक्षा करने वाले हों।

(३) राजाओं को उपर्युक्त प्रकार की कल्याणमयी शिक्षा देने वाले हों।

बेटा महान्! यह है आज का हमारा आदेश। अब हमारा आदेश समाप्त हो गया।

गुरु जी आपने जैसा रूप ब्राह्मणों का वर्णन किया, वैसा आधुनिक समय में नहीं रहा है। जब हम अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा लाक्षागृह पर विचरण कर रहे थे तब हमने सुना कि आधुनिक समय में तो ब्राह्मण जातिवाद बन गया है। गुण, कर्मों के अनुकूल ब्राह्मणादि जातिवाद नहीं रहा है।

बेटा! समय मिलेगा तो कल तुम्हें उच्चारण कर देंगे। वास्तव में तो इस विषय का व्याख्यान तो हमने पूर्व समय में उच्चारण कर दिया था।

जो आपने इसे पूर्व उच्चारण कर दिया तो क्या द्वितीय बार उच्चारण नहीं कर सकते ?

“नहीं बेटा ! इसमें हमारी कुछ हानि नहीं है ।”

“तो कृपा कीजिए ।”

“अच्छा बेटा ! कल देखा जाएगा ।”

“कल तो भगवन् ! आपका होता ही नहीं ! क्योंकि कल जो आपने अपने आपत्ति काल को कहा था वह भी नहीं हुआ । जैसे रावण कल ही कल में मृत्यु को प्राप्त हो गया। वैसे ही हमें प्रतीत होता है कि कल ही कल में आप भी मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे ।”

हास्य····· “अच्छा महानन्द जी ! यह तो तुम आनन्द की वार्त्ता उच्चारण कर रहे हो ।”

हास्य······“गुरु जी ! प्रतीत ही ऐसा हो रहा है क्योंकि रावण भी कल ही कल में समाप्त हो गया था ।

हास्य······“तो बेटा ! जैसा कल समय आएगा, वैसा उच्चारण करेंगे । तुम तो आनन्द की वार्त्ता उच्चारण कर रहे हो ।”

“अच्छा, भगवन् ! तो कल आएगा तो आप उच्चारण कर ही देंगे । क्योंकि कल की वार्त्ता तो आपने पूर्ण कर ही दी । आज की कल और कर देंगे ।”

हास्य···· “अरे तो भाई ! कल आएगा तभी तो ।”

“अच्छा, भगवन् !”

“तो मुनिवरो ! अभी-अभी महानन्द जी कुछ आनन्दित

वार्त्ता उच्चारण कर रहे थे। किसी-किसी स्थान में हम उनकी वार्त्ताओं से बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। अच्छा बेटा! कल तुम्हें वर्ण व्यवस्था पर उच्चारण कर देंगे।"

"यह तो भगवन् आप की इच्छा है।"

"हां बेटा! कल समय मिलेगा तो अवश्य उच्चारण कर देंगे।"

"अच्छा भगवन्! इसमें हमारा कोई विरोध नहीं है।"

ऋषि जी प्रारम्भ कर रहे हैं।

"अच्छा तो बेटा! अवश्य निर्णय करेंगे कल।"

भगवन्! क्योंकि हम आधुनिक काल में भी पाते रहते हैं कि वर्ण व्यवस्था जातिवाद से मानी गई है। आपका जो वह पूर्व काल था, उसमें कैसी वर्ण व्यवस्था थी! आधुनिक काल की वार्त्ता तो हमने उच्चारण कर दी कि अब कैसे ब्राह्मण माने गए हैं।"

"अच्छा, कल का कल देखा जाएगा। कल ही उच्चारण कर देंगे। अब तो समय समाप्त होगयाहै।" तो मुनिवरो! कल महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। अब हमारा वेद पाठ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्त्ता समाप्त होगी।

मृत्यु उपरान्त आत्मा की स्थिति

प्रस्तुत प्रवचन में आत्म विवेचन किया गया है और बताया गया है कि शरीर छोड़ने के उपरान्त आत्मा की क्या स्थिति होती है और किस प्रकार की आत्मा किन २ जन्मों को प्राप्त होती है कौन आत्माएं जन्म मरण के बन्धन से विमुक्त होती हैं। (सम्पादक)

दिनांक २७ सितम्बर १९६४ को कोटली बस्ती, जम्मू-कश्मीर में दिया हुआ प्रवचन

देखो मुनिवरो ! अभी अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ, आज हम पुनः की भांति जटा पाठ में कुछ वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे जिससे हमारा आत्मा बड़ा प्रसन्न होने जा रहा था, ऐसा प्रतीत होता था कि हमें वह अमूल्य प्रकाश प्राप्त हो रहा है, इच्छा तो नहीं थी कि वेद गान को त्याग कर हम देवस्वति सुव्रणी में आ जायें, वेदों का मनोहर गान इस प्रकार का था कि वाणी, हृदय, अन्तःकरण और इन्द्रिय सबका एक समागम हो रहा था, सब एक सूत्र में बंधते जा रहे थे।

मुनिवरो ! आज तो कोई उच्चारण करने का समय नहीं, कोई समय था जब बेटा ! इस वेद गान को हृदय से गाया जाता था तो मार्ग में विचरने वाले मृगराज भी चरणों में ओत प्रोत हो जाया करते थे, मैंने आज से पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि हे गुरुदेव ! यह मृगराज आपके चरणों में है इसका क्या कारण है ? उन्होंने कहा था कि हे पुत्रवत् ! इसका मूल कारण यह है कि जब आत्मा इतनी

बलिष्ट होती है तो हिंसक प्राणी भी अहिंसावादी बन करके अपने हिंसकपन को त्याग देता है।

मुनिवरो ! जहां मेरे पूज्यपाद का आश्रम था वह उस महान् वाणी से, विद्या से सुशोभित था जैसे वृक्ष के पुष्प आ जाते हैं या फल वाले वृक्ष पर फल आ जाते हैं और वह वृक्ष फलों से सुशोभित रहता है इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरु देव के सदाचार और सतोगुण से आश्रम परिपूर्ण रहता था जिससे मृगराज भी बेटा ! उस महानता के इच्छुक रहते थे, पक्षीगण भी शान्त रहते थे, जो कोई मानव चला जाता तो उसका हृदय भी पवित्र हो जाता था।

वेदवाणी वह अमूल्य ज्ञान है जो अहिंसावादी होने की शिक्षा देता है, जिससे मानव का उत्थान हो जाता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय निर्णय कराया कि आज का संसार वेद की पोथी के पीछे है परन्तु जहां वेद के अनुकूल कर्म करने का विधान आता है तो वहां वेद वाणी से विमुख हो जाता है। वेद वाणी का उच्चारण करना उसी काल में सफल होता है जब हम उसके अनुकूल अपने आचरण को बना लेते हैं ! जब तक हम अपने आचरणों नहीं बनाते तो इस वेद वाणी से कोई भी लाभ न होगा, लाभ उसी काल में होता है जब इसके अनुकूल चलता है, न होने से कुछ करना बहुत सुन्दर है। अरे ! अधिक न करो कुछ तो करो, अपने आहार को ही स्वच्छ बना जा, यह एक वेद वाणी का आदेश है।

तो मुनिवरो ! आज हमारा बहुत गम्भीर विषय प्रारम्भ होने वाला है, आज का हमारा वेद मन्त्र आत्मा के विषय में बड़ा सुन्दर वर्णन कर रहा था, आत्मा मानव के शरीर

में विराजमान रहती है परन्तु इस आत्मा का परिवार भी है, आत्मा का परिवार बुद्धि है, मन है, पांच ज्ञान इन्द्रिय हैं, पांच कर्म इन्द्रिय हैं और पांच प्राण हैं, यह सब आत्मा का परिवार माना जाता है, इस परिवार को हमें विचारना है कि कौन कौन क्या क्या कार्य करता है, मानव के मन में स्मरण शक्ति होती है, विचारने की सत्ता होती है, कर्म इन्द्रियों में कर्म करने की सत्ता होती है, ज्ञान इन्द्रियों में ज्ञान पाने की सत्ता होती है, प्राणों में वैश्वानर अग्नि को लेकर उत्थान की सत्ता होती है, इसी प्रकार यह बुद्धि है जो इन सबका अधिपति माना जाता है क्योंकि इसमें सब को ग्रहण करने की शक्ति दी है, यह सत्य असत्य दोनों का निर्णय करती है, आत्मा के निकट जो स्थान है उसे अन्तःकरण कहते हैं, जो वाक्य बुद्धि में अंकित हुआ बुद्धि उस वाक्य को अन्तःकरण में अंकित कर देती है, अन्तःकरण वह स्थान है जिसमें मानव के जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान रहते हैं, इसके पश्चात् यह आत्मा है, आत्मा इस परिवार के कारण बारम्बार शरीरों को धारण करता रहता है।

मुनिवरो ! यदि यह परिवार न होता तो आत्मा को संसार में आने की कोई आवश्यकता नहीं थी जैसे गृहस्थ आश्रम में रहने वाला गृहस्थी अपनी पत्नि, प्यारे पुत्र आदि को त्याग करके व्यापार करने के लिये दूसरे राष्ट्रों में द्वितीय प्रदेशों में रमण करता है परन्तु उसे चिन्ता रहती है कि मुझे अपने परिवार में भी चलना है, मेरा पुत्र है, मेरी पुत्री है, मेरे माता पिता हैं, पत्नी है, चाहे उसे उस प्रदेश में कितना ही लाभ हो परन्तु उसे इस परिवार में आना अनिवार्य होता है क्योंकि वह इस परिवार से बंधा होता है, इसी प्रकार

मुनिवरो ! यह आत्मा जो मानव के हृदय स्थल में विराजमान है इसे अपने इस परिवार के कारण शरीर में आना अनिवार्य हो जाता है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब यह आत्मा इस शरीर को त्यागता है तो कौन कौन सा द्रव्य इस आत्मा के साथ जाता है ?

मुनिवरो ! हमारे दार्शनिक आचार्यों ने इसका उल्लेख देते हुए कहा है कि जब यह इस शरीर को त्यागता है तो पांच कर्म इन्द्रियों का सूक्ष्म स्वरूप अन्तःकरण में व्यापक हो चुका होता है और इस शरीर को त्यागने के बाद जिसे हम सूक्ष्म शरीर कहते हैं, इसमें पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, पांच प्राण, प्रांच प्रकृति के सूक्ष्म महाभूत इन सत्रह तत्वों को माना जाता है, और उस काल में जो भी भावनाएं, जो भी कर्म अन्तःकरण में अंकित हो गये हैं उन अंकित हुए कर्मों को भोगने की यह आत्मा इच्छा करता है। जैसी इस शरीर में मनुष्यों की भावना होती है जैसी प्रवृत्ति होती है और जिस समय उसके प्राण शरीर से निकलते हैं तो यह आत्मा उन्हीं विचारों वाली आत्माओं में बेटा ! अन्तरिक्ष में यह रमण किया करता है !

मुनिवरो ! इस अन्तरिक्ष में कई विचारों की आत्मायें रमण करती हैं—एक तो वह आत्मायें हैं जो मोक्ष के निकट पहुँचने वाली होती हैं—एक वह जो तमोगुणो होती हैं—एक जो रजोगुणो होती हैं, जो मोक्ष के निकट जाने वाली आत्माएं हैं उन्हें हम सतोगुणी आत्मा कहा करते हैं, निर्मल और पवित्र।

मुनिवरो ! जैसा हम इस संसार में कर्म करते हैं, यदि हम

देवत्व कर्म करते हैं तो उन देवत्व आत्माओं में रमण करते हैं और जब हमारा देवत्व कर्म समाप्त हो जाता है और जो कर्म अन्तःकरण में अंकित हैं उन्हें भोगने के लिये संसार में आ पहुंचते हैं।

मुनिवरो! मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय वर्णन कराया कि यह आत्मा तेरह दिवस तक अन्तरिक्ष में रमण करता है, हम इस तेरह दिवस के सिद्धांत को मान लेते हैं परन्तु यह मानने योग्य नहीं क्योंकि यहां कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जिन्हें शरीर को त्यागते ही स्वतः शरीर को धारण करना अनिवार्य होता है और कुछ ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं कि देखो सौ सौ वर्ष भी अन्तरिक्ष में रमण करते हैं, दोनों प्रमाण मिलते हैं परन्तु मेरा एक वचन था कि जैसी भी यहां भावनाएँ, जैसे भी कर्म करके जायेंगे उसी के अनुकूल हमें जन्म प्राप्त हो जाता है यदि हमारे द्वारा तमोगुण प्रधान है और तमोगुण से ही शरीर त्याग दिया है तो उस तमोगुणी आत्मा को उन तमोगुणी आत्माओं में तेरह दिवस रमण करके उसे जन्म लेना अनिवार्य हो जाता है परन्तु जो सतोगुणी आत्माएं होती हैं और यदि उनके मनमें यह विचार होता है कि शरीर को त्यागने के पश्चात् भी मुझे संसार में अवश्य आना चाहिए तो उसे एक मास के पश्चात् संसार में आना अनिवार्य हो जाता है और यह आत्मा "ब्रह्मणे वचतीः सुप्रजा मनोति कामः" जो सतोगुणी आत्मा होती है वह इस शरीर को त्याग करके बेटा! सौ सौ वर्ष तक विमुक्त आत्माओं के निकट रमण करती रहती है जैसे मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी का प्रमाण मिलता है कि उनकी आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करती रहती है परन्तु "सूक्ष्म शरीरम् माध्य

भवेति निश्चयता:" यह माध्यम बना करके कोई "वाक्यं भवते कर्मश्चति कर्मों फलं अश्चति" कर्म फल भोगने के नाते यह सब कुछ हो रहा है परन्तु हमें इन वाक्यों में नहीं जाना, अब वाक्य प्रमाण में प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि जब सौ सौ वर्ष तक यह आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करता है तो क्या यह अन्तरिक्ष में निठल्ला ही रहता है ? जब दर्शन यह कहता है कि बिना शरीर के यह आत्मा एक क्षण भर भी नहीं रहता, श्रुति भी यह कहती है।

मुनिवरो ! इसका उत्तर यह है कि आत्मा निठल्ला किसी काल में भी नहीं रहता, जो तमोगुणी आत्मा होती है उसका तमोगुणी आत्माओं से मिलान होता है, तमोगुणी आत्माओं में रमण करती है, एक शृंगकेतु नाम की वायु होती है उसमें यह आत्मा तेरह दिवस रमण करता है और पूर्व जन्म की स्मृति को त्याग करके संसार में जन्म लेता है।

मुनिवरो ! यह है सिद्धांत, अब जो सतोगुणी आत्मा होती है वह भी निठल्ला नहीं रहती। बेटा ! वह एक इन्द्र नाम की वायु होती है और एक मृचों नाम की वायु होती है और एक सौमभाम नाम की वायु होती है, इन तीन प्रकार की वायु में वह आत्मा रमण करता रहता है और जो वायु में पंच महाभूत सूक्ष्म रूपों से रमण करते हैं उन पंच महाभूतों पर यह आत्मा शासन करता हुआ विमुक्त आत्माओं में विनोद करता रहता है, आनन्द भोगता है और जो इस शरीर में अनिष्ट कर्म किया उस कर्म को भोगने के लिये संसार में जन्म को प्राप्त होता है, ऐसा माना जाता है।

अब बेटा ! प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब यह आत्मा प्रकृति पर शासन करता है तो क्या यह आत्मा स्थूल है या

सूक्ष्म है ? क्योंकि प्रकृति पर शासन करने वाला तो स्थूल होता है आधुनिक काल के अनुसार, परन्तु हमारा ऊंचा योगिक आदेश यह कहता है कि आत्मा में वह गुण अंकित हैं जिन गुणों से प्रकृति को अपने आधीन बनाया है, जैसा सूक्ष्म स्वरूप आत्मा का हुआ वैसे ही आगे प्रकृति भी इतनी सूक्ष्म बन जाती है. दोनों एक दूसरे पर शासन करने लगते हैं। सुना बेटा ! कि आगे चल करके आत्मा भी सूक्ष्म और प्रकृति भी सूक्ष्म, अब सूक्ष्म पर सूक्ष्म शासन करता है यहां बेटा ! संसार में स्थूल पर स्थूल शासन करता है जैसे कृषि करने वाला वैश्य कृषि पर शासन करता है। मुनिवरो ! अणु को, वायु को, अग्नि और स्थूल को जानने वाला स्थूल को ही जानता है। सूक्ष्म वस्तु सूक्ष्म को जाना करती है। यह तुमने जाना नहीं, यह मानना ही अनिवार्य है क्योंकि यह हमारा दर्शन कहता है।

मुनिवरो ! यहां बेटा ! बहुत गम्भीरता में नहीं जाना है, आज केवल वाक्य यह चल रहा था कि आत्मा की क्या-क्या स्थिति होती है जन्म लेने से पूर्व, और इसका उत्तर आज मैंने भलीभांति दिया कि आत्मा के जन्म लेने से पूर्व उसके विचार संसार में आने के होते हैं, उनके विचार संसार के लिये होते हैं, वह माता के गर्भ स्थल में प्रविष्ट होता है और माता से जन्म धारण करता है, जब माता ने पालन पोषण किया तो वह उन कर्मों को करने के लिये उद्यत हो गया, यह प्रवृत्ति रहती है।

अब मृत्यु के पश्चात् क्या प्रवृत्ति रहती है, जब यह आत्मा इस शरीर को त्यागता है ? तो ऐसा विदित होता है कि अब तेरा शरीर रूपी वस्त्र विहीन हो गया है और इस शरीर रूपी वस्त्र को त्यागना अनिवार्य है और इस शरीर को त्याग करके

उन आत्माओं में रमण करता है जो उस आत्मा के विचार वाली आत्मा होती हैं। जैसे मैंने पूर्व कहा है कि तमोगुणी आत्मा तमोगुणी आत्माओं में, सतोगुणी सतोगुणी में और रजोगुणी रजोगुणी में यह आत्मा रमण करता है।

एक सिद्धांत और ले लो बेटा ! वैज्ञानिक चर्चा भी है कि जो मैंने मानव शरीर में नौ द्वार निर्णय कराये हैं वह नौ द्वार दो चक्षु, दो घ्राण, दो श्रोत्र, एक मुखारविन्द, उपस्थ और गुदा इन्द्रिय यह नौ द्वार हैं परन्तु दसवां द्वार योगी का होता है जिसको ब्रह्मरन्ध्र कहतेहैं। जिसका आत्मा मानो उपस्थ और गुदा इन्द्रियों से जाता है तो वे मल-मूत्र के कीड़े बनते हैं, इनमें क्रीड़ा करते हैं, बेटा ! जिनका आत्मा मुख से जाता है वह इस संसार में विषैले कीड़े बनते हैं जैसे सर्प आदि नाना विषैले जन्तु होते हैं और जिनका आत्मा घ्राण से जाता है वे अगले जन्म में मनुष्य बनते हैं और जिनका आत्मा चक्षुओं से जाता है वह अन्तरिक्ष में विचरने वाले प्राणी बनते हैं और मुनिवरो। जिनका आत्मा श्रोत्रों से जाता है।

(महानन्द)भगवन् ! आप एक वाक्य अशुद्ध उच्चारण कर गये हैं इसी समय।

अरे क्या ?

"भवेती श्रोत्रं भवति चक्षुः न हिनं।"

अशुद्धं भवति। तो मुनिवरो ! अभी उच्चारण करते जा रहे थे कि जिनका आत्मा इन श्रोत्रों के मार्ग से जाता है वे अन्तरिक्ष में विचरने वाले प्राणी कहलाते हैं परन्तु जिनका आत्मा चक्षुओं से जाता है वे जलचर वाले प्राणी कहलाते हैं और जिनका आत्मा ब्रह्मरन्ध्र से जाता है वे सतोगुणी और सतोयुग के वासी कहलाते हैं।

आज हमें इन वाक्यों से विचार लेना चाहिये कि हमारे जो यह नौ द्वार हैं इनका भी परम पिता परमात्मा ने विधान बनाया है, आज हमें विचार लेना चाहिये कि घ्राण इन्द्रिय से जिसका आत्मा निकलता है वह प्राणी बना करते हैं, मनुष्य होते हैं, देवकन्याएं होती हैं परन्तु इसमें भी अन्तर है, घ्राण में एक सूर्य एक चन्द्र सुर होता है, जिसका आत्मा चन्द्र सुर से जाता है वह तमोगुणी पुरुष बनते हैं और जिनका आत्मा सूर्य सुर से जाता है वह देखो सतोगुणी या ऊंचे विशाल कर्म करते हैं या रजोगुणी और सतोगुणी दोनों कर्म करते हैं संसार में और मुनिवरो ! जिनका आत्मा ब्रह्मरन्ध्र से जाता है बेटा ! जैसा मैंने अभी अभी वर्णन किया है उनका आत्मा विमुक्त आत्मा, जो मोक्ष के निकट वाली आत्मायें हैं उनमें वह आत्मा रमण किया करता है, वह इस संसार में जन्म लेता है किसी का उत्थान करने के लिये, राष्ट्र का उत्थान करने लिये या सामाजिक दृष्टि से उत्थान करने के लिये या नाना प्रकार के उत्थान करने के लिये जन्म लेता है। तो हे मेरे भोले आचार्य जनो ! यह माता गार्गी का सिद्धांत है जो मैंने आज वर्णन किया।

आज का हमारा आदेश यह चल रहा था कि इस शरीर को त्यागने के पश्चात् इस आत्मा की क्या स्थिति होती है और जन्म लेने से पूर्व क्या स्थिति होती है, दोनों ही तुम्हारे समक्ष निर्णायात्मक किये परन्तु यह विषय बहुत गम्भीर है, दर्शनों को विचारने से भी प्राप्त होता है अन्यथा यह बहुत से वाक्य अनुभव से सिद्ध होते हैं। हमें वेद ज्ञान से इन्हें विचार लेना चाहिए, वेदों में यह सब ज्ञान प्राप्त होता है।

हे मेरे आचार्यजनो ! आज हमारा यह आदेश क्या कह

रहा था। यह युक्तियां देता चला जा रहा था और श्रुतियों की चर्चायें करता चला जा रहा था।

(महानन्द) तो गुरु देव ! आपका यह आत्मा ब्रह्मरन्ध्र से जाया हुआ है या घ्राण से ?

हास्य ·····महानन्द जी ! जो तुम उच्चारण करो वही बेटा ! यथार्थ है, इसमें क्या बात है।

(महानन्द) भगवन् ! हमें तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आपका आत्मा मुखारविन्द से जाया हुआ है।

हास्य ·· तो बेटा ! तुम यह सब वार्त्ता विनोद की कर रहे हो, तुम विनोद की चर्चायें बारम्बार न किया करो यह विषय विनोद का नहीं है और न यह समय ही विनोद का है।

हास्य ·· मेरे भोले प्यारे पुत्रवत ! तुम "अंगृते विनोदं भवति आनन्द वाक्यं भवते।" बेटा ! तुम हर समय विनोद की ही चर्चा करते रहते हो, इस विनोद में भी बड़ा आनन्द है, संसार में जब मानव चिन्ता में होता है उस समय एक दूसरे से विनोद करने लगो, चिन्ता से विहीन होते चले जाओगे यहां चिन्ता करने से कोई कार्य नहीं बनता, भावी प्रबल होती है किसी कार्य में, समय समय के अनुसार प्रकृति का रूप बन जाता है और जैसा प्रकृति का रूप होता है वैसे मनुष्य के विचार होते हैं और जैसे विचार होते हैं वैसा ही संसार होता है और जैसी संसार की भावनाएं होती हैं ऐसे ही तत्व होते हैं जैसे तत्व होते हैं ऐसे ही मुनिवरो ! वहां कारनामे होने लगते हैं, कार्य होने लगते हैं, जब कार्य होते हैं तो उन कर्मों को भोगने के लिये यह सब आत्माएं आती हैं संसार में।

मुनिवरो ! जैसा अभी वर्णन किया मेरे प्यारे महानन्द जी उच्चारण किया करते हैं कि आज का संसार चिन्ता में लीन

है. सबसे मुख्य चिन्ता का कारण है कि इसने आत्मा के आवेश को त्याग दिया, जब आत्मा के आवेश को त्याग दिया तो नाना प्रकार की चिन्तायें इस पर आ पहुँचीं, कभी हमें अपने जीवन की चिन्ताएं हैं कभी हमें अपने उदर पूर्ति की चिन्ताएं हैं, कभी राष्ट्र की चिन्ताएं हैं, यह सब चिन्ताएं क्यों हैं ? इनका मूल कारण क्या है ?

अरे ! मानव अपनी मानवता को त्याग करके जैसे विचार बनता हैं वैसे ही वह वाक्य अन्तरिक्ष में रमण करते हैं। और जैसी भावनाएं अन्तरिक्ष में रमण करती हैं वैसी वायु रमण करती है, वह वायु मेघो से, वैश्वानरों से और प्रकृति से मिलान करती है, समूह होकरके वही विचार सूक्ष्म रूपों से इन पर आ जाते हैं, आक्रमण करने लगते हैं और जब उनको भोगते हैं तो कष्ट होता है।

अरे ! कष्ट क्यों होता है जब तुमने यह किया है, उसको भोगने में कष्ट क्या है ? आज तुम्हें इस वाक्य को विचार लेना चाहिये।

मुनिवरो ! आज मैं यह आत्मिक चर्चा, गम्भीर चर्चा क्यों कर रहा था ? इसलिये कि मानव को ज्ञान होना चाहिये कि हम कौन हैं और कौनसा कर्म करना चाहिए जिससे 'वृद्धि-प्रसणेश्चते।'

मेरे प्यारे ऋषि मण्डल एक समय देव ऋषि नारद मुनि ने इस संसार में आ विचरण किया तो देखा कि सब प्रजा गंगा स्नान को चली जा रही है, देव ऋषि नारद प्रजा से बोले कि हे प्रजा तुम कहां जा रही हो ? प्रजा बोली कि महाराज गंगा स्नान को जा रहे हैं। अरे ! क्यों ? महाराज ! हमने जो पाप किये हैं वह हम गंगा में त्याग आयेंगे। अब नारद मुनि ने

विचारा कि जब गंगा प्रजा के सब पापों को अपने में धारण कर लेती है तो गंगा तो बड़ी पापनी है, अब वह बहते हुए गंगा के समक्ष जा पहुंचे और बोले कि हे गंगा ! तुम बड़ी पापनी हो, यह प्रजा तुम्हें सब पाप देती रहती है और तुम एकत्रित करती रहती हो। गंगा बोली कि विधाता ! मेरे द्वारा यह पाप क्यों होते, जैसे यह प्रजा मुझे पाप दे देती है मैं समुद्रों को अर्पित कर देती हूँ।

अब नारद मुनि गंगा को नमस्कार कर समुद्रों के द्वार जा पहुंचे और बोले कि मैं आप से कुछ वार्त्ता प्रगट करने के लिये आया हूँ। अरे क्या ? महाराज ! आज मैं मृत मण्डल में भ्रमण करता हुआ आ रहा था तो देखो प्रजा गंगा स्नान को जा रही थी, मैंने प्रजा से प्रश्न किया कि कहां जा रही हो तो प्रजा बोली महाराज ! गंगा स्नान को और अपने सब पापों को गंगा को अर्पित कर आयेंगे, मैं गंगा के द्वार जा पहुंचा और गंगा से बोला कि तुम बड़ी पापनी हो जो प्रजा के सब पापों को एकत्रित कर लेती हो, गंगा बोली विधाता ! जैसे प्रजा मुझे देती है मैं इन पापों को समुद्रों को दे देती हूँ, अब मैं भगवन् ! प्रश्न करने आया हूं कि तुम्हारे द्वारा बड़े पाप एकत्रित हो रहे हैं, समुद्र बोले कि अरे नारद ! बड़े भोले, यह पाप मेरे द्वारा क्यों होते, मैं तो इन सब पापों को एकत्रित करके मेघों को दे देता हूँ।

अब मुनिवरो ! वह मेघ मण्डलों के द्वार जा पहुंचे और मेघों से बोले कि अरे मेघ मण्डल ! तुम बड़े पापी हो, प्रजा अपने पाप गंगा को देती है, गंगा समुद्रों को और समुद्र तुम्हें देते हैं और तुम्हारे द्वार पाप एकत्रित होते हैं. मेघ मण्डल बोले कि अरे नारद ! यह पाप मेरे द्वार भी नहीं, मैं तो इन

सब पापों की वृष्टि कर देता हूँ और प्रजा के पाप प्रजा के द्वार पहुंच जाते हैं, पाप मेरे द्वार क्यों होते।

तो मुनिवरो! यह वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है कि मानव का पाप मानव के कार्य आता है इसलिये मुनिवरो! आज आत्मिक तत्व जानने का कार्य करोगे तो तत्ववेत्ता बनोगे, यहां ऊंचे से ऊंचा कर्म किया जाये जिससे आज यह प्रकृति तुम्हारे आधीन हो करके तुम्हारी इच्छानुसार फल देने वाली बने परन्तु वह कर्म न करो जिससे प्रकृति तुम्हारे ऊपर छा जाये और वह कर्म जो तुमने किया है प्रकृति उसे पाप मूल बन करके तुम्हें दे। अपने जीवन में प्रकृति को अवसर मत दो परन्तु परमात्मा की गोद में जाने का प्रयत्न करो।

तो मेरे भोले आचार्य जनो! आज का हमारा यह आदेश समाप्त होने जा रहा है, आज मैंने संक्षेप वाक्य प्रगट किया।

(महानन्द) भगवन्! अभी तो आपका समय नहीं हुआ है।

नहीं बेटा! समय समाप्त हो चुका है, आजका हमारा प्रकरण ही इतना है, आज जितना प्रकरण था उसके अनुकूल वाक्य उच्चारण किया, आज का हमारा मूल आदेश था कि हमें इस आत्मा के परिवार को विचारनाहै जिसमें पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्म इन्द्रिय, मन, बुद्धि और पांच प्राण हैं, इन सब ही को विचारना है जब यह आत्मा सूक्ष्म रूपों से अन्तरिक्ष में रमण करता है तो सत्रह तत्त्वों का शरीर माना जाता है—पांच ज्ञान इन्द्रिय, मन, बुद्धि, पांच प्राण और पांच महाभूत यह सत्रह तत्त्व हैं। मुनिवरो! इसके पश्चात् एक कारण शरीर होता है जिसमें केवल ज्ञान और प्रयत्न रह जाता है। यह मन, बुद्धि और ज्ञान इन्द्रिय शान्त हो जाती हैं, सब कुछ शान्त हो करके केवल आत्मा का स्वाभाविक गुण,

ज्ञान और प्रयत्न रह जाता है, वह होने के पश्चात् उसे बेटा ! मुक्ति कहते हैं।

(महानन्द) तो क्या भगवन् ! यह जो मन है यह अनादि नहीं ?

बेटा ! यह मन तब ही तक रहता है जब तक मानव के अन्तःकरण में कर्म हैं और कोई वस्तु अंकित है परन्तु जब वह अंकित न रहेगी तब मन भी न रहेगा। मन अनादि तब तक है जब तक यह आत्मा जन्म लेने वाला है, जब तक संसार में आने जाने वाला है और मुक्त होने के पश्चात् इस आत्मा के मन का सम्बन्ध पृथक् हो जाता है यह आनन्द में रमण करता है।

(महानन्द) भगवन् ! जब मन इस आत्मा से पृथक् हो जाता है तो आनन्द को कौन अनुभव करता है ? आनन्द को अनुभव करने वाला कौन है ?

बेटा ! आनन्द को अनुभव करने वाला यह आत्मा है।

तो क्या भगवन् ! आत्मा में भी विचार शक्ति है ? दुःख सुख को अनुभव करने की शक्ति मन में है या आत्मा में ?

बेटा ! यह मन में होती है।

तो मुक्ति में यह कैसे माना जाये कि यह मन नहीं रहता क्योंकि वहां भी तो यह दुःख, सुख व आनन्द अनुभव करता है तो किससे करता है ?

बेटा ! जब यह आनन्द में रमण करता है तो उस समय ज्ञान और प्रयत्न आत्मा के स्वाभाविक गुण रह जाते हैं, इसका जो स्वभाव है वह आनन्द स्वरूप है और जिसका स्वभाव आनन्द स्वरूप है वह अपने स्वभाव से आनन्द ही भोगता है।

तो भगवन् ! यह जो मन है इससे दुःख सुख को अनुभव करते हैं और इस आनन्द को इस स्थिति में "ब्रह्मणे पृथ्वी सद्म वेती न अनुभवेति कर्सशः ।"

बेटा ! यह सब प्रकृति का स्वरूप माना जाता है और प्रकृति में रमण कर जाता है और यह जो आत्मा निर्मल और पवित्र है यह ब्रह्म में रमण करने लगता है. इसके मध्यम की जो सीमा थी वह यह इसके परिवार की थी, वह समाप्त हो गई ।

(महानन्द) चलो ! वाक्य को मान लेते हैं, परन्तु अभी सन्तुष्टि नहीं हुई ।

हास्य बेटा ! क्यों नहीं हुई ?

भगवन् ! जब आप यह कहते हैं कि दुःख सुख अनुभव करने वाला मन है तो आत्मा में आनन्द के भोगने का स्वभाव कैसे माना जाये ?

बेटा ! वह उसका स्वभाव है ।

भगवन् ! इससे कार्य नहीं चलेगा, आप यह कहने लगें कि सूर्य दो हैं तो कौन बुद्धिमान् स्वीकार कर लेगा, हम कैसे स्वीकार कर लें ।

बेटा ! सूर्य दो नहीं परमात्मा की सृष्टि में अनन्त सूर्य हैं, तुम तो दो को उच्चारण कर रहे हो, पूर्व तुम सृष्टि विद्या को तो जाना उसके पश्चात् प्रश्न किया करो, परमात्मा की सृष्टि में असंख्य सूर्य माने गये हैं, वेद का प्रमाण है ।

भगवन् ! पूर्व आप हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा कीजिये ।

हां ! तो तुम्हारा यह प्रश्न था कि मन दुःख सुख को अनुभव करता है परन्तु कौन से दुःख सुख को ? जो प्रकृति से

होने वाला है और इन्द्रियों के द्वारा होता है उसे यह मन अनुभव करता है और बेटा! जो ब्रह्म में आनन्द का रमण है उसको यह आत्मा स्वाभाविक ही अनुभव कर सकता है।

हाँ! अब कुछ भगवन्! सन्तुष्टि हो गई है कि यह मन प्रकृति से बनता है और प्रकृति के दुःख सुख को अनुभव करता है। तो क्या भगवन्! यह मन परमात्मा को अनुभव नहीं करता?

बेटा! इसका जो सम्बन्ध रहता है वह आत्मा से रहता है, आत्मा का मिलान परमात्मा से रहता है, मन का मिलान आत्मा से और आत्मा का मिलान परमात्मा से रहता है, और जब तक इसे वह स्थिति जीव की प्राप्त नहीं हो जाती है तब तक यह आत्मा के साथ रहता है। मन का सम्बन्ध कर्म से है और कर्म बद्धता के साथ साथ रहता है जब तक आत्मा के साथ प्रकृति का मिलान है। परन्तु जहां चैतन्य का मिलान हुआ, प्रकृति से आत्मा का सम्बन्ध स्वयं छूट जाता है जैसे मेरी कोई भोली माता गर्भवती है और जब उसका गर्भाशय परिपक्व हो जाता है तो उन नाड़ियों से जो सम्बन्ध रहता था जैसे पंचम नाम की नाड़ी माता की लौरियों से चलती है और जिसका सम्बन्ध बालक की नाभि से होता है और माता की लौरियों में जो रस बनता है वह पंचम नाड़ी के द्वारा बालक के उदर में जाता है, माता का गर्भाशय बढ़ता है परन्तु जहां गर्भाशय पूर्ण हुआ इन नाड़ियों का सम्बन्ध स्वयं छूट जाता है। इसी प्रकार यह आत्मा जब परमात्मा के गर्भ में चला जाता है तो प्रकृति से इसका सम्बन्ध स्वयं छूट जाता है।

यह है बेटा! आज का हमारा आदेश, अब आदेश समाप्त हो गया, कल समय मिलेगा तो शेष वार्त्ता कल होगी।

धन्य हो भगवन् ! आज का आदेश बहुत प्रिय और सुन्दर लगा। कल क्या विषय होगा ?

कल महानन्द जी जैसा तुम कहो उसी के अनुकूल होगा।

कल भगवन् ! हमारी तो यह इच्छा है कि आप योग के सम्बन्ध में कुछ वाक्य प्रगट करें, ब्रह्मरन्ध्र से जो आत्मा जाता है वह कौन सी युक्तियों से और कौन से कर्मों से।

अच्छा तो बेटा ! कल जैसा समय होगा उसके अनुकूल वाक्य प्रगट करेंगे।

"वह तो भगवन् ! समय आता ही रहेगा।"

"हां बेटा ! आता रहेगा तो वाक्य भी प्रगट होते रहेंगे।"

"तो गुरु जी ! कल हमारे प्रश्नों का उत्तर दे देना जी।"

अच्छा बेटा ! कल जैसा समय आवेगा देखा जायेगा, अब हमारा यह आदेश समाप्त हो गया है, कल समय मिलेगा तो और भी श्रेष्ठ वार्त्ता प्रकट की जायेगी, अब हमारा वेद पाठ होगा, इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जायेगी।

सृष्टि उत्पत्ति और राष्ट्र निर्माण

[अवान्तर विषय :—ओंकार प्रभु विश्वकर्म्मा के विधानानुसार ऋषियों द्वारा आदि मानव सृष्टि की उत्पत्ति, उसके करोड़ों वर्ष पश्चात् स्वायम्भु मनु द्वारा राष्ट्र निर्माण और राजधर्म प्रवर्तन। देव-दानवों का आदि संग्राम व समुद्र मन्थन, चौदह रत्न और चौदह मन-मन्तरों की उत्पत्ति।]

वेद प्रचार सप्ताह पर २१ अगस्त
१९६२ की रात्रि के ९ बजे
विनय नगर में दिया प्रवचन

देखो मुनिवरो ! अभी अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ। हम तुम्हारे समक्ष वेद मंत्रों का पाठ कर रहे थे। आज के मनोहर वेद पाठ में हमारे हृदय की ज्योति प्रकाशित होने के लिये प्रस्तुत हो रही थी।

कल मेरे प्यारे लोमश मुनि ने बहुत ऊंचे भाव प्रकाशित किये, इनके व्याख्यानों की हमसे प्रशंसा नहीं की जाती. इनका वाक्य कितना उच्च, हृदय को छूने वाला, अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाला, वायु मंडल, अन्तरिक्ष मंडल में जहां यह वार्त्ता जाती है वहां के वातावरण को शुद्ध बनाने वाला था। आज हम उन महान् आचार्यों की प्रशंसा, उनकी महानता का वर्णन अपने मुखारविन्दों से नहीं कर सकते और न किया जाता है।

मुनिवरो ! हमें यह तो उच्चारण नहीं करना जो उच्चारण करने लगे। आज हमें "ओ३म्" के बहुत ऊंचे शिखर पर

जाना है। वेद का प्रत्येक मन्त्र उस "ओ३म" से बिन्धा हुआ है। जिस प्रकार यह परमात्मा की अनन्त सृष्टि है और प्रकृति के कण कण में उस चेतन प्रभु का प्रकाश, महत् प्रकाशित हो रहा है जिससे यह प्रकृति अपना कर्त्तव्य कर रही है, इसी प्रकार प्रत्येक वेद मंत्र का शब्दार्थ उस "ओ३म्" से बिन्धा हुआ है; जिस "ओ३म्" को हम प्रभु का मुख्य नाम कहा करते हैं।

आज कोई प्रश्न करता है कि "ओ३म" नाम ही मुख्य क्यों माना है और नामों को मुख्य क्यों नहीं माना ? वास्तव में परमात्मा के जितने नाम हैं उन सबसे परमात्मा प्रकाशित हो रहा है, उसके महान् गुणों का वर्णन, कर्त्तव्य का वर्णन है; प्रत्येक पर्यायवाची शब्दों में वह महत्व भरे वाक्य आ जाते हैं। परन्तु, "ओ३म्" को इसलिये हमारे यहां मुख्य माना जाता है क्योंकि जैसे एक मानव है उसको मानव भी कहते हैं, उसको पुरुषोत्तम भी कहते हैं, मनुष्य भी कहते हैं और नाना रूपों से पुकारा जाता है। जैसे मेरे प्यारे महानन्द जी हैं। परन्तु जब नाम उच्चारण किया जायेगा तो महानन्द जी ही कहना पड़ेगा। इसीलिये मुनिवरो! प्रभु का एक मुख्य नाम "ओ३म" है। ऐसा महान् नाम है जिसमें महान् विचित्रता भरी हुई है और वह प्रत्येक वेद मंत्र में प्रकाशित हो रहा है।

मुनिवरो! आज हम क्या उच्चारण करने लगे, यह तो हमें व्याख्या नहीं देनी। आज हम पूर्व के मन्त्रों में उस विश्वकर्म्मा की याचना कर रहे थे कि हे विधाता! आप विश्वकर्म्मा हैं, आपने भगवन्! संसार को उत्पन्न किया है। मुनिवरो! प्रभु ने इस महान् सृष्टि का निर्माण किया है। उसकी रचना का गुण गान कहां तक गाते चले जायें, गाया

नहीं जाता। आज हम उस प्रभु का गान गा रहे थे जो हमारे जीवन का साथी है, संसार को चलाने वाला है, प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या के हृदय में समाने वाला है।

मुनिवरो! लोमश मुनि ने कल इतने ऊंचे शब्दों का प्रसार किया कि उन महान् ऊंचे शब्दों का वर्णन तो हमसे नहीं किया जाता। परन्तु, आज हमारा विषय बड़ा महान् और दार्शनिक बनने लगा है। देखो! प्रभु ने सबसे पूर्व इस संसार को महत् दिया। नाना तन्-मात्राओं के द्वारा इस संसार को उत्पन्न किया। जिस प्रकार बालक के माता के गर्भ में जाने से पूर्व ही उस महान् प्रभु ने उसके खान पान का प्रबन्ध किया, इसी प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में जब यह सृष्टि की रचना हुई, महाराजा शिव ने महान् इस माता पार्वती को सत्ता दी जिसके गर्भ से यह संसार उत्पन्न हो गया।

(महानन्द) गुरु जी कल आपने सृष्टि की उत्पत्ति की गणना कराते हुए कहा था कि आज संसार को १,९७,८३,५७,२९२ वर्ष हो चुके हैं। परन्तु आज जब हम लाक्षागृह पर विचरण कर रहे थे तो जो इस सृष्टि की उत्पत्ति की गणना सुनी तो वह १,९७.८९,४९,०९२ वर्ष है। हमारे निर्णय में नहीं आ रहा कि आपकी वार्त्ता को सत्य माने या इसे।

"महानन्द जी! इसके ऊपर विचार करेंगे।"

"विचार किस स्थान पर करेंगे भगवन्! अभी कर लीजिये, इसका उत्तर शीघ्र दे दीजिये।"

"अच्छा महानन्द जी! आगे को वाक्य होने दो, देखेंगे क्या विचार आता है।"

"विचारना क्या भगवन्! वह तो हमारी वार्त्ता सत्य होती दीखती है।"

"(हास्य के साथ) देखा जायेगा, आगे प्रकरण को चलने दो।"

"अच्छा।"

मुनिवरो ! अभी अभी महानन्द जी ने प्रश्न किया परन्तु हमारी यह हठ नहीं कि महानन्दजी के इस वाक्य को न मानें। हो सकता है हमारी गणना में कोई सूक्ष्मता रह गई हो। महानन्द जी का वाक्य यथार्थ हो, इसमें कोई वार्त्ता नहीं। सत्य वार्त्ताओं को स्वीकार करने में किसी की कोई हानि नहीं। इसलिये, हम अवश्य इनके वाक्यों को स्वीकार कर लेंगे। अन्तिम में विचार करेंगे। अब हम प्रारम्भ कर रहे थे कि उस विश्वकर्म्मा ने सबसे पूर्व, जब यह पृथ्वी शीतल बनने लगी, समता आने लगी, तन्-मात्रायें और महान पंच-भूत इन सबका संगठन बना करके महान् सृष्टि का कार्य चलने लगा।

मुनिवरो ! सब से पूर्व उस विश्वकर्मा ने यह नाना प्रकार की वनस्पतियों को उत्पन्न किया जिसे स्थावर सृष्टि कहते हैं। जैसे अभी हमने माता का प्रमाण दिया, इसी प्रकार प्रभु ने हमारे खान पान का प्रबन्ध पूर्व किया। वृक्ष योनि में नाना प्रकार की जातियां हैं, जिनमें नाना औषधियां भी हैं, नानाएं ऐसे ऐसे पौष्टिक पदार्थ हैं जिन पर मानव का जीवन-निर्वाह होता है।

वृक्ष योनि के पश्चात् इस अण्डज सृष्टि को उत्पन्न किया जिसे हम अण्डज और उद्भिज सृष्टि कहते हैं। कोई मानव प्रश्न करे कि विधाता ने इस अण्डज सृष्टि को इस प्रकार क्यों उत्पन्न किया ? सबसे पूर्व तो मानव को उत्पन्न करना था। परन्तु, नहीं। अण्डज सृष्टि में नाना जल में और वृक्षों पर रहने वाले जीवधारी हैं। जितने जलचर महान् जलों में रहते हैं वह

मानव के लिये बड़े उपयोगी हैं; जैसे, जल में रहने वाले मच्छ इत्यादि हैं। जल में जो नाना प्रकार की दुर्गुणता उत्पन्न हो जाती है, जो मानव के लिये बहुत हानिकारक होती है, उन सब को आहार करने वाले वह जीव जलचरों में हैं। वे जल को शुद्ध करते हैं कि जिससे मानव को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे।

मुनिवरो! इसके पश्चात् जरायुज सृष्टि का निर्माण किया, जिसे जंगम सृष्टि भी कहते हैं, जिसमें नाना जातियां हैं जैसे गऊएं हैं, मनुष्य जाति हैं। माता पिता तो थे नहीं, बिना माता पिता के संयोग से यह मानव जाति कैसे उत्पन्न हो गई, कैसे यह वृक्ष योनि उत्पन्न हो गई? जब तक इसमें बीज का अंकुर न था और न कोई इसे उपजाऊ करने वाला था तो यह संसार इस प्रकार क्यों उत्पन्न हो गया? आज यह समस्या हमारे समक्ष बड़ी महान् है।

मुनिवरो! यह जो प्रकृति है इसमें स्वतः ही पूर्व की भांति सब बीज रूप अंकुर में रहता है। जैसे, वट वृक्ष का महान् एक सूक्ष्म सा बीज होता है। जब पृथ्वी में उपजता है तो महान् वृक्ष बन जाता है, इसीप्रकार महान् सूक्ष्म रूपों से परमाणु रूपों से यह बीज महान् इस प्रकृति माता में रहता है जो महान् सबको अपने गर्भ में धारण करने वाली है। इसी प्रकार का यह संसार प्रभु ने अपनी महत्वता से, अपनी चेतन सत्ता से इस संसार को रचाया।

अब विचार आता है कि प्रभु ने यह संसार इस प्रकार का क्यों रच दिया, उसे क्या आवश्यकता थी? क्या प्रभु ने अपनी प्रशंसा के लिये इस संसार को रचाया? नहीं। प्रशंसा के लिये नहीं परन्तु अपना कर्त्तव्य मानते हुए। जैसे माता की लोरियों

में लगकर बालक अपने जीवन को पा लेता है। माता का क्या मन्तव्य है? माता के शरीर में जैसे आत्मा है, ऐसे ही बालक के शरीर में है। परन्तु माता को क्या आवश्यकता है? कोई मन्तव्य नहीं। उसने तो केवल अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिये अपनी महानता का एक प्रदर्शन किया, जो महान् एक बालक की पालना की। इसी प्रकार उस विधाता शिव ने प्रकृति माता पार्वती को साथ ले करके इस संसार को उत्पन्न किया जो आज नियमबद्ध हो रहा है।

मुनिवरो ! नाना प्रकार के प्रश्न हमारे समक्ष उत्पन्न होते हैं इस मानव जाति को विधाता ने कैसे उत्पन्न किया? मुनिवरो ! जैसे माता गर्भवती है, वह जो भी आहार करती है उसका कच्चा रस कुछ स्वांग नाम की नाड़ी द्वारा लोरियों में जाता है और वहां परिपक्क होता है। उस नाड़ी का सम्बन्ध नाभि के द्वारा होता है और वह परिपक्व रस नाभि के द्वारा जाता है। जैसे बेल के ऊपर फल लगता है परन्तु वह कितना विचित्र होता है कि जिस समय वह परिपक्व हो जाता है तो वह फल बेल से स्वयं पृथक् हो जाता है। इसी प्रकार इस महान् पृथ्वी से मानव जाति का अंकुर उत्पन्न होता है। अंकुर उत्पन्न होने के पश्चात् इसका सम्बन्ध नाभि के द्वारा होता है, माता पृथ्वी से रस लेता रहा जैसे वृक्ष और नाना योनियां उत्पन्न हुई, इनमें माताएं भी पुरुष भी, देवकन्याएं भी, सब उत्पन्न हुए।

आज मानव प्रश्न करता है कि क्या यह मानव जाति युवा या बाल्य अवस्था में हुई? इसका उत्तर यह है कि यह सब युवा अवस्था में हुई क्योंकि यदि वह बाल्य अवस्था में होती तो उसका पालन पोषण कौन करता, युवा उत्पन्न होने के पश्चात् यह सृष्टि क्रम चलने लगा।

जब यह क्रम चलने लगा तो प्रश्न आता है कि यह ज्ञान कहां से आया जब सृष्टि को चलाने की जानकारी कराने वाला कोई समक्ष न था ?

मुनिवरो ! इस प्रकरण में यह माना गया है कि वह महान् आत्माएं जिन्हें मोक्ष तो प्राप्त नहीं हुआ परन्तु जिन्होंने उच्च कर्म किये और मोक्ष के निकट पहुंचे उन्होंने अपने पूर्व जन्मों के पुण्यों से उस प्रभु की सृष्टि में जन्म धारण किया और जन्म धारण करके इस विधान को किया जो आज चल रहा है, माता-पिता का, आहार-व्यवहार का सब ही कुछ विधान हमारे ऋषि महर्षियों ने निर्णय किया, जो हमारे यहां ब्रह्मा, अंगिरा आदित्य आदि ऋषि कहे जाते हैं, इन्होंने पुरुषों को, देव-कन्याओं को सबको विशेष ज्ञान कराया, इस ज्ञान को पाते हुए यह संसार अभी तक इस प्रकार चला आ रहा है।

(महानन्द) "गुरु जी ! हम इन वार्त्ताओं को स्वीकार नहीं कर रहे, यदि देवकन्याओं का और पुरुषों का सम्बन्ध पृथ्वी से रहता है तो आज भी रहना चाहिये। आपने जैसे एक बेल का प्रमाण दिया है कि उसका फल परिपक्व होकर स्वयं पृथक् हो जाता है तो यह मनुष्य भी बेल पर लगना चाहिए ?"

(हास्य के साथ) "अरे मूर्खानन्द ! यह वार्त्ता उच्चारण करे बिना तुम्हें शान्ति नहीं होती। तुम ऐसे वाक्य उच्चारण करोगे कि न होने योग्य हैं और न इनका कोई उत्तर ही दिया जायेगा।"

(हास्य के साथ) गुरु जी ! यह तो वही वार्त्ता है कि उत्तर नहीं बनता नो शांत हो जाओ।"

"अरे ! सुना करो। असंगत प्रश्न नहीं किया करते। जिसकी कुछ रूप रेखा नहीं उसका उत्तर क्या ?"

"तो गुरुजी ! आपके वाक्य की भी तो कोई संगत नहीं।"

"अच्छा सुनो ! इसका उत्तर यह माना जाता है कि जब माता पृथ्वी और पिता प्रभु (जड़ता और चैतन्यता) दोनों की समता होती है तो महान् यह सृष्टि क्रम नियमबद्ध चला करता है। मानव जाति को इसी प्रकार उत्पन्न किया। ऋषियों की अनुपम कृपा हुई। प्रभु की महान् इस सृष्टि में आ करके अपना कर्त्तव्य पूर्ण करने के लिये इस संसार को पूर्व की भांति ज्ञान कराया। जैसा पूर्व व्याख्यान में कह चुके हैं कि आदि सृष्टि में आत्माएं अनेक होती हैं जिन्हें पूर्व सृष्टि का ज्ञान होता है, उसी पूर्व सृष्टि के नियम से परमात्मा की नवीन सृष्टि को नियमबद्ध कर देते हैं। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर यह है जो हमसे बन रहा है। इन्होने बेल का प्रमाण मिथ्या कहा है परन्तु मिथ्या नहीं हो सकता, क्योंकि जब महान् बेल का, वृक्ष योनि का सबका अंकुर इस प्रकृति में विराजमान है तो इसी प्रकार पुरुष के और महान् अपनी महत् का पूर्व की भांति जो अंकुर रहता है, वह उत्पन्न हो जाता है। माता पृथ्वी और पिता प्रभु दोनों की समता हो करके महान् सृष्टि का निर्माण हो जाता है। अपनी महान् कारीगरी से उस प्रभु विश्वकर्म्मा ने इस संसार को रचा है।

अहा ! महान् ऋषियों का कितना बड़ा परोपकार है। आज उन ऋषियों के गौरव को शान्त करते चले जा रहे हैं। इस संसार में ही नहीं लोक लोकान्तरों में ऋषियों का गौरव है क्योंकि जिन आत्माओं ने अपने ज्ञान का विकास किया। आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न स्वाभाविक होता है। पूर्व की भांति ज्ञान होने के कारण उन्होंने इस सृष्टि को क्रमबद्ध कर दिया। वास्तव में तो प्रभु ने इसको रचा और उसी ने क्रमबद्ध किया।

मुनिवरो ! आगे हमारे समक्ष आता है कि आज जो यह चारों वेद हैं जिसे प्रभु की वाणी कहते हैं यह कहां से आई ? कैसे आई ? क्योंकि जिस समय प्रलय होती है उस समय यह ज्ञान भी परमात्मा के आंगन में चला जाता है, यह प्रकाश यहां नहीं रहता। इसका उत्तर यह बनता चला जा रहा है कि उन महान् चार ऋषियों को पूर्व की भांति वेदों का ज्ञान था, ज्ञान होने के कारण प्रभु की महत्त्वता पा करके महान् उस प्रभु की सृष्टि में जा करके पूर्व की भांति वेदों का प्रसार किया।

मेरे प्यारे महानन्द ने एक काल में ऐसा कहा कि वेद एक ही है जो ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ और महर्षि व्यास ने इसके चार काण्ड किये। परन्तु इसका उत्तर यह है कि महर्षि व्यास मुनि इस द्वापर काल में हुए परन्तु यहां तो राम को, वशिष्ठ मुनि महाराज को चारों वेदों की चुनौती दी जा रही है। इसका स्पष्ट उत्तर तो यह है कि महान् चारों काण्ड सृष्टि के प्रारम्भ में चारों ऋषियो द्वारा प्रभु की सहायता से प्रगट हुए।

मुनिवरो ! आज यह हमारा दार्शनिक और गम्भीर विषय है, जिस गम्भीर विषय के लिये मानव को बहुत विचारने की आवश्यकता है ! मेरे प्यारे महानन्द जी प्रश्न कर रहे हैं कि जब बिना माता पिता के सृष्टि प्रारम्भ हुई तो महान आज क्यों नहीं होती ? इनका यह प्रश्न निरर्थक है युक्ति से भिन्न है। युक्ति देना सामान्य व्यक्तियों का कार्य नहीं। महानन्द जी यह युक्ति देंगे कि प्रभु ने इस सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ में किया और आज तक चला आता है तो यह मानव इतना पाप न करता। इसका सहज उत्तर यह है कि मेरी माताओं के शरीर की, मेरे पिताओं के शरीर की रचना विचित्र है, इसमें

बुद्धि का मंडल है, मन का मंडल है, प्रकृति का मंडल है,

अन्तरिक्ष का मंडल है, आत्मा का मंडल है, अन्तःकरण का मंडल है, इन सबका मंडल इसमें विराजमान है। यह सब मंडल होने के कारण इसमें ज्ञान और प्रयत्न है जिसके कारण वह कार्य जो प्रभु ने इसे दिया है वह कार्य करना अनिवार्य है। प्रभु ने तो एक समय नियम बनाया कि इस मार्ग पर चलो, उस मार्ग पर मानव का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। इसमें मानव का कर्म करना धर्म है। आज मानव इसमें नाना प्रश्न करे तो इसका कोई उत्तर नहीं, यह प्रश्न असंगत बन जायेंगे।

तो मुनिवरो! यह आज हमारा एक आदेश प्रारम्भ हो रहा था। जो मेरे प्यारे महानन्द ऋषि ने अभी अभी प्रश्न किये, उनके उत्तर हम देते चले जा रहे हैं। इन्होंने जो अब प्रश्न किया है वह असंगत है, उसकी कई संगति नहीं बन रही है जैसे विधाता ने महान् मेघों को उत्पन्न किया और प्रारम्भ से चल रहे हैं, प्रभु ने विद्युत् को बनाया। विद्युत् कहां रहती है? विद्युत् जल में रहती है। जिसे हम नाना यन्त्रों से उत्पन्न करते हैं।

गुरु जी! इस विद्युत् के विशेषण में तो हमने ऐसा सुना है कि राजा कंस ने माता यशोदा की कन्या पर जो भगवान् कृष्ण के स्थान पर लाई गई थी, उसको नष्ट किया तो उसकी विद्युत् बन करके मेघों में चली गई थी और मेघों में चले जाने से राजा कंस भयभीत हुआ क्योंकि उसने आकाशवाणी से कहा था कि मैं तेरे विनाश के लिए उत्पन्न हो गई हूं और यह वह विद्युत् है। जिसमें कंस के परिवार का कुछ अंकुर होता है उसी पर उसका प्रहार हो जाता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु, आपने विद्युत् को जल से कहा है, इसका भी आपके द्वारा कोई उत्तर न होगा?

अरे ! तुम सुना तो करो, पूर्व ही उच्चारण कर देते हो। यह विद्यु त् तो प्रारम्भ से है। यह तो तन्मात्राओं का रूप है। यह विद्यु त् तो वह है जो प्राणों के महान् संघर्ष से उत्पन्न होती है। जब यह मेघ अन्तरिक्ष में रहते हैं तो इन्द्र-वायु अपने प्राण रूपी वज्रों का आक्रमण करता है, जल और इन्द्र दोनों का संघर्ष होता है। दोनों के आक्रमण से विद्यु त् उत्पन्न हो जाती है। रही यह वार्त्ता कि कंस ने कन्याओं पर प्रहार किया तो बेटा ! इसको हम भगवान् कृष्ण के जन्म दिवस पर वर्णन करेंगे जो निकट आ रहा है। आज इन प्रश्नों का उत्तर देने का कोई समय नहीं मिल रहा है।

(हास्य के साथ) "हम तो पूर्व ही कहा करते हैं, इसमें कोई ऐसी वार्त्ता नहीं है भगवन् !"

"अरे ! तुम इतने मग्न क्यों हो रहे हो, कल तो तुमने कोई प्रश्न किया नहीं, आज ऐसे प्रश्न करते चले जा रहे हो कि तुम्हारे वाक्यों से हम अपने मार्ग से विचलित हो जाते हैं।"

"अच्छा भगवन् ! आप कहें तो हम प्रश्न करना शान्त कर दें, आपकी आज्ञा की देरी है"

(हास्य के साथ) "अच्छा ! अब तुम शान्त रहो "

मुनिवरो ! अभी अभी हम विद्यु त् का प्रकाश दे रहे थे जैसा महान् आचार्यों ने वर्णन किया है, उसी आदेश से हम प्रारम्भ कर रहे थे।

अभी अभी हम सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ कर रहे थे। यहां ऐसा माना जाता है जैसा आचार्यों से आदेश मिला, कि ३६ लाख वर्ष तक सृष्टि में यह ऋषियों का काल चलता रहा। इसमें न कोई राजा था न प्रजा थी, प्रभु के आंगन में, प्रभु की ज्ञान। में, वेद के आधार से इसी प्रकार चलता रहा। किसी किसी

ऋषि का तो ऐसा अनुमान है कि करोड़ों वर्ष सृष्टि इसी प्रकार चलती रही। आज हम अपने वाक्यों को शान्त कर लें कि ३६ लाख वर्ष नहीं। इसको करोड़ों वर्ष मान लेवें तो इसमें भी हमारी कोई हानि नहीं। क्योंकि ऋषियों का अनुमान है, उनकी अनुमति में हमारी अनुमति है। हमारा ३६ लाख वर्ष का अनुमान मिथ्या भी बन सकता है। परन्तु, ऋषियों ने जैसा कहा वह यथार्थ होता है। इसलिए, आज हम ३६ लाख वर्षों की वार्त्ताओं को उच्चारण करते हुए करोड़ों वर्षों की वार्त्ताओं को यथार्थ मानते चले जा रहे हैं। करोड़ों वर्षों तक संसार में यह ऋषि मण्डल चलता रहा। ऋषि पति और ऋषि पत्नियां सब ही की संज्ञायें इस प्रकार की चलती रहीं। सन्तान उत्पति महान् से महान् वेद के अनुकूल। उसी के आधार से यह महान् सृष्टि का निर्माण होता चला गया। आज हमारा केवल यह आदेश चल रहा था कि विश्वकर्मा ने यह कैसा विशाल संसार रचाया है।

करोड़ों वर्षों के पश्चात् स्वायम्भु मनु महाराज ने आकर इस सृषि को देखा कि इसमें कुछ सूक्ष्मता आ गई है। विचारों में कुछ नवीनता आ पहुंची है। उन्होंने वेद के आधार से राष्ट्र का निर्माण किया। उस समय ऋषियों ने कहा कि आपने राष्ट्र का निर्माण तो किया परन्तु हम यह जानना चाहते हैं कि यहां का राजा कौन बनेगा ? उन्होंने कहा कि भगवन् ! कोई भी राजा बन सकता है। ऋषियों ने कहा कि हम तो राजा बनने के लिये प्रस्तुत नहीं। तब उन्होंने कहा कि हम अवश्य राजा बनेंगे। तो मुनिवरो ! स्वायम्भु मनु महाराज ने सब से पूर्व राज्य के कर्म करने के लिये इस अयोध्या नगरी का निर्माण किया।

(महानन्द) "गुरुजी एक वार्त्ता और जानना चाहते हैं कि

जिस काल में प्रभु ने यह सृष्टि रची तो उस समय क्या यह दैत्य नहीं रचे थे जो आज पाप कर रहे हैं? क्या उस समय पाप नहीं होता था? यदि पाप नहीं था तो कहां से आया?"

"बेटा! यह तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर कल दिया जायेगा।"

"गुरुजी! सूक्ष्मसा प्रमाण दे दीजिये।"

अच्छा! सुनो! वास्तव में प्रश्न बड़ा महत्व पूर्ण है, हृदय को छूने वाला है। यदि परमात्मा ने दैत्य उत्पन्न नहीं किये थे तो कर्म की महान् क्रीडायें समाप्त हो जाती हैं। उस काल में दैत्य भी थे जो महान् ऋषियों के विपरीत कार्य किया करते थे। ऋषि सत्य उच्चारण करते तो वह मिथ्या उच्चारण करते थे। इसी प्रकार आज भी वह कार्य चल रहा है। जब कोई महान् आत्मा समाज में गुणग्राही वाक्य प्रारम्भ करता है, तो वाम-पक्षी, जिनमें दैत्यों का अंकुर होता है, वह उस महान् आत्मा के विपरीत कार्य किया करते हैं। इसी प्रकार ऋषि समाज में भी देखो दैत्य थे। क्योंकि, जैसे कर्म थे उस कर्म के अनुकूल योनि तो प्राप्त होती थी। परन्तु, सृष्टि के प्रारम्भ में दैत्य बहुत सूक्ष्म थे, न होने के तुल्य माने जाते है, पर थे अवश्य। देखो! यदि इस महान् परमात्मा की सृष्टि में यह मिथ्या वाक्य न होता तो सत्य की कोई महत्त्वता नहीं थी। सत्य न होता तो इस मिथ्या का निर्णय नहीं हो सकता था। इसलिये, सत्यवादी और मिथ्यावादी सृष्टि के प्रारम्भ से हैं।

आगे आगे यह संसार चलता रहा। जिस समय स्वायम्भु मनु महाराज ने राष्ट्र का निर्माण किया, उस समय मिथ्यावादियों की संख्या पूर्व से अधिक हो गई थी। आज हमारे समक्ष प्रश्न आता है कि अयोध्या नगरी में आगे दशरथ ने भी राज्य किया, स्वायम्भु मनु महाराज ने भी किया, तो स्वायम्भु मनु महाराज

किसको कहते हैं ? यह तो बहुत गहन विषय हो जाता है। जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ देव और दैत्यों का संग्राम हुआ और महाराजा विष्णु ने इस महान् संसार-समुद्र से चौदह रत्न निकाले। जिस प्रकार गौ के दुग्ध का मन्थन करके घृत निकाला जाता है, इसी प्रकार संसार रूपी समुद्र का मन्थन किया गया। देव और दैत्यों ने शेषनाग की नेती बनाई। एक महान् गिरि की मथनी बनाई और समुद्र का मन्थन किया जिसमें से चौदह रत्न निकले।

महानन्द जी ने तो ऐसा कहा है कि आधुनिक काल के अनुकूल उन चौदह रत्नों में चन्द्रमा है, विष का घड़ा है, कामधेनु और नानाएं सूर्य आदि हैं। परन्तु यहां केवल यह ही अभिप्राय नहीं होता। यहां भी एक महान् विलक्षण वाक्य आता है। देखो ! शेष कहते हैं परमात्मा को। परमात्मा की नेती बना करके इस मन की एक मथनी बनाई। जब मन का महान् इस शेष से सम्बन्ध हो जाता है तो महान् इस शरीर रूपी समुद्र का मन्थन होता है। एक स्थान में दैत्य और एक स्थान में देवता कौन है ? देवता अच्छे संस्कार, अच्छी मान्यता और दैत्य काम, क्रोध, मद, लोभ आदि हैं। इस शरीर रूपी समुद्र को मथा जाता है, तो इसमें प्रकृती का मण्डल, बुद्धि का मण्डल, चन्द्रमा का मण्डल, बृहस्पति का मण्डल आदि यह सब निकाले जाते हैं, जिन्हें चौदह रत्न द्वारा पुकारा गया है। ऐसा हमारे आचार्यों ने इसका प्रतिपादन किया है।

मुनिवरो ! आज इन चौदह रत्नों को चौदह मन्वन्तर ही क्यों न मान लिया जाये ? यह संसार प्रभु ने एक हजार चतुर्युगियों का रचा है। यह इसकी अवधि है। इसको चौदह भागों में क्यों न नियुक्त किया जाये। उन महान् आचार्यों ने, महान्

ऋषि मण्डल ने, उस तार्किक और दार्शनिक मण्डल ने यह कहा कि भाई संसार को चौदह विभागों में बांट दो, जो चौदह मन्वन्तर माने गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में एक मनु होता है जो राष्ट्र का निर्माण किया करता है।

"गुरु जी ! कैसे ? अपने आंगन में नहीं आया।"

"यह इस प्रकार है बेटा ! कि चौदह मनु होते हैं। यह संसार प्रभु ने रचा है, एक हजार चतुर्युगियों का है। यह इसकी अवधि है। इसके चार विभाग बनाये गये हैं, चारों विभागों में चार मनु होते हैं जो राष्ट्रों का निर्माण और विधान बनाते हैं। एक एक मन्वन्तर में एक एक मनु के नियम चलते रहते हैं।"

"तो भगवन् ! इसमें कुछ सूक्ष्मता हो जाये तो राष्ट्र का निर्माण कौन करे ?"

इसका अभिप्राय यह है कि स्वायम्भु मनु महाराज ने जो भी इसका निर्माण किया है उसे जान करके जो भी राजा महाराजा राष्ट्र का स्वामी बने वह दैत्यों पर शासन करने वाले उन नियमों के अनुकूल कार्य करे।

"तो गुरु जी ! क्या राज्य दैत्यों पर ही होता है ?"

हां ! ऐसा माना गया है। राजाओं के महान् जो कर्मचारी हैं, राजदूत हैं वह बेटा ! किसके लिये ? वह न हमारे लिये न तुम्हारे लिए, न सत्पुरुषों के लिये, वह तो बेटा ! उनके लिए हैं जो पाप करते हैं।

(हास्य के साथ)......"तो भगवन् ! हमारे लिए भी राजदूत नहीं हैं।"

(हास्य के साथ)... "महानन्द जी ! इसलिये नहीं क्योंकि आप भी सत् कर्म करते हैं, सत्य वक्ता हैं और हम भी

बेटा परमात्मा की परम कृपा से कुछ कुछ सत्य उच्चारण कर देते हैं।"

(हास्य के साथ)....."तो गुरु जी ! कुछ ही कुछ उच्चारण करते हो ? इसका अभिप्राय यह है कि जो अब तक उच्चारण किया इसमें मिथ्या भी है।"

बेटा ! तुमने इस रहस्य को जाना नहीं। हमने जो कहा है कि हम भी कुछ कुछ सत्य उच्चारण किया करते हैं तो इसका अभिप्राय यह नहीं, हम मिथ्या भी उच्चारण करते हैं परन्तु हो सकता है कि कोई बात मिथ्या उच्चारण हो जाये। हमारे मिथ्या का फल तो प्रभु देगा। राज्य के कर्मचारी तो हमें इन मिथ्या शब्दों का दंड न देंगे और न इसका कोई पुण्य मिलेगा। इसलिए बेटा ! विचारना यह ही है कि मानव जो पाप किया करते हैं, दुराचारी व्यक्ति हैं उनके लिए राज्य के दूत हैं। सत् पुरुषों के लिए, महान् ऊंची देव कन्याओं के लिए, ऊंचे कर्म करने वालों के लिए राज्य का कोई प्रबन्ध नहीं। वह तो राष्ट्र नियम को जानते हैं, नियम के आधार से चलते हैं, उनको राजा भी यह नहीं कहता कि तुम नियम के विरुद्ध चल रहे हो। देखो ! स्वायम्भु मनु महाराज ने राष्ट्र का निर्माण किया। किसके लिये किया ? जो तुच्छ बुद्धि वाले व्यक्ति हैं, जो इन महान् आत्माओं को, महान् सच्चे व्यक्तियों को कष्ट न दे पायें। तो महानन्द जी ! तुम्हारे आंगन में आ गई यह वार्त्ता ?

"हां ! आ गई भगवन् !"

तो मुनिवरो देखो ! परमात्मा की सृष्टि का चार भागों में उल्लेख माना गया है परन्तु यह चौदह भाग कैसे बनते हैं। ७१ चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर माना जाता है और प्रत्येक

मन्वन्तर में एक मनु माना जाता है जो राष्ट्र का निर्माण कर देता है। जैसे ७१ चतुर्युगियों में महान् कोई त्रुटियां हो जायें, राष्ट्र निर्माण की नवीन समस्यायें पापियों को नष्ट करने की आ जायें, तो उसके पश्चात् द्वितीय स्वायम्भु मनु महाराज उसका निर्माण कर देते हैं।

"तो गुरु जी ! इसका निर्माण मनु महाराज या स्वायम्भु मनु महाराज ही क्यों करते हैं ? और भी कोई ऋषि कर सकता है ? हम और आप भी कर सकते हैं ?"

बेटा ! यह हमारे यहां उपाधि मानी गई है, जैसे नारद है, इन्द्र है और नानाएं ऋषि उपाधि हैं। स्वायम्भु मनु उसी को कहते हैं जो राष्ट्र का ऊंचा निर्माण कर दे। अब तुम यह कहोगे कि इसकी चुनौती कौन देता है ? इसकी चुनौती देता कौन, परमात्मा की एक महान् देन के आधार पर स्वयं एक मन्वन्तर के पश्चात् मनु आ करके राष्ट्र का निर्माण कर देता है। मुनिवरो ! इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह ही आत्मा आये जिसने स्वायम्भु मनु की उपाधि को पा लिया हो। जैसे बेटा ! हमने सुनाहै कि जो राजा एक सौ एक अश्वमेध यज्ञ करा लेता है, उसको इन्द्र कहते हैं। जो मन की गति को जान जाता है और उस गति से स्वयं चलने वाला बन जाता है उसे नारद की उपाधि मिल जाती है। इसी प्रकार यह भी उपाधि मानी गई है।

तो मुनिवरो ! अभी अभी हमारा एक महत्वदायक आदेश चल रहा था कि विश्वकर्मा ने इस संसार को रचा और प्रभु के नियम के अनुकूल उन महान् आत्माओं ने पूर्व सृष्टि नियम के आधार से इसको क्रमबद्ध नियुक्त कर दिया। यह सृष्टि-क्रम है। आज मानव को विचारना चाहिए कि महान् प्रभु ने यह

संसार महान् आत्माओं के लिए बनाया। उच्चकर्म करने के लिए प्रभु ने इस संसार को रचा। उसकी अपनी अवधि है। यहां कहा जा रहा था कि राज्य के कर्मचारी महान् आत्माओं के लिए, सत् पुरुषों के लिए, यथार्थ पुरुषों के लिए नहीं। यह तो केवल दुष्ट कर्म करने वालों के लिए हैं। इसलिए मानव को यथार्थ कर्म करना चाहिये, जिससे हम उच्च बनें। हमें राजा के कारागार से बचना चाहिए। आज यदि हम इस राजा के कारागार से बचने का कर्म करेंगे तो इसके पश्चात् हमें विचार धारा होगी कि जब हम इस राजा के राष्ट्र में हम महान् इतने दुखित हो रहे हैं तो जब हम इस शरीर को त्याग करके प्रभु के राष्ट्र में जायेंगे तो प्रभु हमें कौन से कारागार में भेजेगा। इसलिए हमें उन कर्मों को विचारना चाहिए जिससे हम परमात्मा के कारागार में भी न जा सकें। हमें अपना जीवन हर प्रकार से उच्च बनाना है। मानव को इस आदेश पर अवश्य चलना चाहिए जिसे वैदिक-सम्पत्ति कह रही है।

मुनिवरो ! अब यह हमारा आदेश समाप्त हो गया है। हमने विचार कर लिया है कि सृष्टि की गणना जो कल कराई थी वह अशुद्ध उच्चारण कर दी थी। महानन्द जी का वाक्य शिरोमणि हो गया है। मन्वन्तरों के आधार से इनका वाक्य यथार्थ बन रहा है।

"भगवन् ! यह तो बनता, जैसा हमने कहा है।"

"अच्छा !"

तो मुनिवरो ! अब हमारा यह आदेश समाप्त हो गया है। महानन्द जी तो यह प्रश्न करते ही रहते हैं और ऐसे प्रश्न करते हैं जिनका उत्तर नहीं बनता।

(हास्य के साथ) "गुरु जी ! आगे आगे तो वह प्रश्न आयेंगे जिनका आप से उत्तर बनेगा ही नहीं।"

(हास्य के साथ) "अच्छा बेटा ! देखा जायगा। आगे समय आयेगा तो उन प्रश्नों का यथाशक्ति उत्तर भी दिया जायेगा और न दिया जायेगा तो क्षमा मांग लेंगे बेटा ! और क्या होगा ?"

तो मुनिवरो ! महानन्द जी तो मग्न होते रहते हैं, ऐसी वार्त्ता प्रारम्भ करने लगते हैं कि हृदय भी मग्न होता रहता है वास्तव में तो इनके शब्द बड़े कटु हैं। परन्तु कटु होने के नाते भी हम यह माना करते हैं कि चलो गुरु-शिष्य का विनोद इस प्रकार का होता ही रहता है। कोई ऐसी वार्ता नहीं। प्रश्न ही तो करते हैं, जो इनके प्रश्नों का हमसे उत्तर बनता है वह दे देते हैं, नहीं बनता तो शान्त हो जाते हैं।

(हास्य के साथ) "वह तो भगवन् ! आप शान्त हो ही जाते हैं। यह बात स्वाभाविक ही है।"

"अच्छा बेटा ! अब इन विनोद की वार्त्ताओं का समय नहीं है। अब हमारा वाक्य समाप्त होने वाला है। कल समय मिलेगा तो इससे आगे की वार्त्ता प्रारम्भ करेंगे। अब वेदों का पाठ करेंगे इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जायगी।

"धन्यवाद !"

संसार की सब भाषाओं का मूल संस्कृत भाषा

[अवान्तर विषय:—पाखण्डी किसे कहते हैं ? मानव को केवल वेद का बौद्धिक ज्ञाता नहीं होना चाहिये परन्तु उसके अनुकूल अपना जीवन उच्च बनाना चाहिये। देवनागरी का प्रचलन पुरातन काल से है। संसार की सब भाषायें संस्कृत से सम्बन्धित हैं। आदि ब्रह्मा से व्याकरण के विकास तथा महर्षि पाणिनि मुनि द्वारा उसको सरल करना।]

दिनांक २ अक्टूबर १९६४ को गीता भवन
जम्मू में दिया हुआ प्रवचन

देखो मुनिवरो ! अभी अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ। आज हम तुम्हारे समक्ष पुनः की भांति कुछ वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे, जिन वेद मन्त्रों में मानव का विवरण और परमात्मा का प्रतिपादन किया जा रहा था।

वेद वह अमूल्य विद्या है जिसको धारण करके हम अपने जीवन को सफल बनाते हैं, हमारे आचार्यों ने कहा है कि वेद मानव के अन्तःकरण को ऊँचा बनाने वाला है परन्तु अब प्रश्न होता है कि वेदों में तो मन्त्र हैं और मन्त्र मानव के हृदय को कैसे पवित्र बना सकते हैं ?

मुनिवरो ! वेद में वह भोजन है जिस भोजन से आत्मा तृप्त होता है, आज मानव को संसार में अपनी आत्मा को तृप्त करना है, वेद में वह ज्ञान है जिस ज्ञान विज्ञान से आत्मा तृप्त होती है और अपने आनन्द को अनुभव करती है, वेद में

वह प्रकाश है परन्तु उस प्रकाश को हमें रावण की भांति नहीं परन्तु राम की भांति स्वीकार करना है।

बेटा! तुमने सुना होगा रावण चारों वेदों का ज्ञाता और वैज्ञानिक था परन्तु उसके पश्चात् भी उसे दैत्य और यवन की श्रेणी में चुना जाता है और वह इसलिये कि वह अक्षरों का बौद्धिक था, जो मानव संसार में अक्षरों का बौद्धिक होता है उस मानव का यह वेद उत्थान नहीं करता, वह तो बेटा! एक प्रकार का पक्षी होता है और वह रटन्त विद्या को अपने में धारण करता है और उससे अपने मानवत्व को ऊँचा नहीं बनाता तो बेटा! वह संसार में रावण ही कहलाता है।

मुनिवरो! रावण का राष्ट्र कहां तक था? इस आर्यावर्त्त में था, पाताल पुरी में था, इन्द्र पुरी में था जिसको हम त्रिपुरी भी कहते हैं और जिसको भवनेति राज्य और चिरंगित कहते हैं इन सब ही राष्ट्रों में विस्तार से रावण का राज्य हो चुका था। राष्ट्र नीतिज्ञ था, केवल नीति जानता था परन्तु उस नीति के साथ साथ यदि धर्म होता तो रावण की पताका संसार में सबसे उच्च कहलाती परन्तु उसके राष्ट्र में नीति थी कि दूसरों का हनन करो और राज्य करो, रावण के पुत्र मेघनाथ ने इन्द्र को विजय किया और त्रिपुरी के राष्ट्र का स्वामी बना, रावण के पुत्र अहिरावण ने 'सुरीखी' नाम के राजा को नष्ट किया और वह पातालपुरी का स्वामी बना और देखो रावण के पुत्र नारायणान्तक ने 'सुनभूमित' नाम के राजा को नष्ट किया और वहां अपना राज्य किया जिसे सोमकेतु नाम का राष्ट्र कहते थे, और भी उनके सम्बन्धी जैसे खर-दूषण इत्यादि थे उनका राष्ट्र इस आर्यावर्त में भी प्रसार होता चला आ रहा था। राजा रावण के आततायियों से यह संसार

व्याकुल था। क्या करें बेटा! भाग्यवश रावण के राष्ट्र में नीति थी धर्म नहीं था, नीति भी क्या अधर्मश्चती नीति थी, यदि उसके साथ साथ धर्म भी होता तो निश्चित था कि रावण की पताका संसार में सबसे ऊंची कहलाती।

मुनिवरो! राम ने क्या किया? महर्षि वाल्मीकि का कथन है कि राम ने रावण के उस अत्याचार को नष्ट किया। राम जब अपनी पताका को लेकर चले तो सबसे प्रथम निषाद के राज्य में जाकर उन्होंने अपनी संस्कृति का प्रसार किया। मुनिवरो देखो! बाली और सुग्रीव—बाली बहुत ऊँचा और वेद का पंडित था परन्तु क्या करें वह भी संस्कृति से दूर चला गया था, अपने छोटे विधाता की पत्नी को अपने गृह में प्रविष्ट कर लिया था, राम ने उन्हें नष्ट किया और अपनी ऊंची संस्कृति का प्रसार किया, रावण के पुत्र नारायणांतक को नष्ट किया और वहां के सोमभास नाम के राजा को राज्य दिया, जिसको सोमकेतु नाम का राज्य कहते थे, पातालपुरी में अहिरावण को नष्ट कर हनुमान के पुत्र मकरध्वज को वहां का राज्य दिया और रावण को नष्ट कर रावण के विधाता विभीषण को वहां का राष्ट्र दे करके उसके पश्चात् बेटा! वह अपनी अयोध्यापुरी में आ पहुंचे, उच्चारण करने का अभिप्राय कि मेघनाथ आदि सबको नष्ट किया।

आज मेरे प्यारे महानन्द जी कहा करते हैं कि आधुनिक काल में उन राष्ट्रों के नाम परिवर्तन हो चुके हैं। इन्होंने मुझे निर्णय कराया, आज तो मैं महानन्द जी से जानना नहीं चाहता।

आजका हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था? मानवत्व के लिये पुकारता है, सब जनता के लिये पुकारता है, जहां सब

चारता होती है वहां परमात्मा की अनुपम कृपा होती है, परमात्मा उनका साथी बनता है और जहां सदाचारता नहीं होती वहां दुराचारता होती है, परमात्मा उनका रक्षक नहीं होता, उनका पाप ही एक समय शत्रु बन करके उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर देता है। संसार में, आज प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या को विचारना चाहिये और धर्मज्ञ बनना चाहिये।

आज संसार में प्रत्येक मानव उच्चारण कर देता है कि यह तो पाखण्डी है, मेरे प्यारे महानन्दजी मुझे कई काल में निर्णय कराया करते हैं कि आधुनिक काल में अपने सूक्ष्म शरीर से संसार की वासनाओं को पान करता हूँ तो देखता हूँ कि जहां यह हमारी और आपकी आकाश वाणी मृत मण्डल में जाती है वहां उसे पाखण्ड रूप से पुकारा जाता है परन्तु मैं कहा करता हूं कि जिन भोले प्यारे मनुष्यों ने पाखण्ड की व्याख्या पान नहीं की उन्हें प्रतीत नहीं की हम पाखण्ड किसे कहते हैं।

मुनिवरो ! आज के वेद पाठ में पाखण्ड की बड़ी विस्तार से व्याख्या आती चली जा रही थी, मैं यदि पाखण्डी कहा करता हूं तो रावण को कहा करता हूँ, चारों वेदों का पंडित भी संसार में पाखण्डी कहलाता है और एक अक्षर को भी न जानने वाला संसार में सदाचारी कहलाता है, यह निश्चित नहीं कि संसार में वेद पाठी ही सदाचारी बन सकता है, एक निरक्षर व्यक्ति भी सदाचारी बन सकता है, वेद का पाठी दुराचारी बन सकता है जैसे रावण को अभिमान था कि मैं सार्वभौम का स्वामी हूं, उसके द्वारा दम्भ था, छल था, कपट था, संस्कृति से दूर था, वेद के एक वाक्य को भी अपने हृदय में पान करने वाला न था और इसलिये वह पाखण्डी कहलाता था। संसार में वह पाखण्डी कहलाता है जो वेद ही वेद पुकारता है और

वेद के अनुकूल न उसका आहार है और न व्यवहार है और न उसकी वाणी है, केवल रटन्त मात्र उच्चारण करता है, उसे मुनिवरो ! हमारे यहां पाखण्डी की चुनौती दी जाती है।

आज जो दूसरों से द्वेष करता है, अपनी प्रशंसा को जान कर अपने आत्मिकत्व को समाप्त करता रहता है, वह संसार में पाखण्डी कहलाता है। वेद में एक मन्त्र आता है "रूढ़िश्चति ब्राह्मणाः वाचनोती पाखण्ड अमरोतश्चती विश्वम् समेते। वारणोति ब्राह्मणाः कामश्चती वेतु न देवम् समिते निश्चया॥" ऐसा कहा है कि जिसका निश्चय ही नहीं हुआ, जिसकी कोई धारणा ही नहीं, जिसके उदार भाव ही नहीं वह संसार में दम्भी, छली और कपटी कहलाता है।

मेरे भोले आचार्य जनो ! आज क्या व्याख्या कर रहा था कि आज हमें विचार विनिमय करना चाहिये; आज अपने वाक्यों के अनुकूल अपने विचारों को प्रबल बना लेना चाहिये, जब हमारे विचार उदारता से भरे हुए होंगे, उदारता हमारे विचारों में होगी। मैं अपने पूज्यपाद गुरु देव से कहा करता था कि हे भगवन् ! मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या वेद का पाठी ही संसार में योगी बन सकता है ? उन्होंने उत्तर में कहा था कि हे पुत्रवत् ! कदापि नहीं, संसार में एक वेद मन्त्र को अपने हृदय में धारण करने से वह ऋषि और मुनि कहला सकताहै। मुनि-वरो ! देखो जैसा मैंने कल कहा था कि एक वट वृक्ष जो संसार में विशाल वृक्ष माना जाताहै बीज में बहुत सूक्ष्म अंकुर रूप में रहताहै परन्तु जब वह उपजाऊ हो जाता है तो इतना विशाल वृक्ष बन जाता है। इसी प्रकार वेद का एक मन्त्र वट वृक्ष के अंकुर की भांति है, उसमें सब ही कुछ सम्पन्न विद्यायें हैं, आज उसके अनुकूल अपने जीवन को बनाते हैं, अन्तःकरण में उस

महान् वेद मन्त्र को अंकित कर लेते हैं तो वह अन्तःकरण में उपजता है और हमारा हृदय विशाल बन जाता है। उस वेद मन्त्र में अग्नि है, उसे अग्ने कहते हैं, वह अग्नि हमें अग्नि से सम्बन्धित कराती है, जब अग्नि का सम्बन्ध अग्नि से हो जाता है तो मुनिवरो ! वह तेज में रमण करता है। कौनसी अग्नि से ? भौतिक अग्नि से नहीं परन्तु जिस वेद रूपी अग्नि का अंकुर है, ज्ञानमय अग्नि का अंकुर अग्नि बन करके उस विशाल अग्नि से हमारा मिलान कराती है जहां विशाल अग्नि में रमण करके हम अग्नि स्वरूप बन जाते हैं। बेटा ! आज संसार में हमें अग्ने बनना है जैसा वेद की एक व्याहृति को अपने हृदय में धारण करने से सम्पन्न वेद के ज्ञाता बन सकते हैं। मुनिवरो देखो ! हमारे कंठ से निचले भाग में हृदय चक्र होता है। हृदय चक्र में एक सुरित नाम की नाड़ी होती है और सुरित नाम की नाड़ी के द्वारा बेटा एक चक्र होता है; तुरिण और मिधिरण नाम की नाड़ियों का एक चक्र होता है, उस चक्र में मेधावी बुद्धि का संक्षेप रमण करता है, उसमें वह वेदों की पोथी की पोथी का ज्ञान रमण करने लगता है, उसमें रिधिन्न होता रहता है जैसा देखो अन्तरिक्ष में वाक्य रमण करते हैं। जो भी वाक्य हम उच्चारण करते हैं, जिस विद्या को हमने पान किया है उसी विद्या से जो वाक्य हम उच्चारण करना चाहते हैं वही वाक्य अन्तरिक्ष से आता है, वाक् से सम्बन्ध हो करके वही वाक्य प्रारम्भ होने लगता है।

मुनिवरो ! इसी वाक्य के प्रारम्भ होने को हमारे यहां मेधावी बुद्धि की "रिधि भूषणम्" कहा है, यह मेधावी बुद्धि का भूषण है और भूषण को धारण करने से मानव का जीवन

विकास दायक बनता है, नाना प्रकार के दम्भ, छल, आडम्बरों से दूर हो जाता है।

तो मेरे भोले आचार्यजनो ! आज का हमारा यह आदेश चल रहा था कि हम अपने मानवत्व को विकासदायक बनायें, अग्नेमय ज्योति बनाये और अग्नेमय ज्योति से जब हम रमण करते हैं, हृदय में धारण करते हैं मानवत्व के लिये, राष्ट्रत्व के लिये योगित्व के लिये तो यह मानवमात्र हमारे लिये लाभदायक हो जाता है।

(महानन्द) भगवन् मैंने आज से पूर्व काल में कुछ प्रश्न किये थे कि आप देवनागरी में क्यों उच्चारण करते हैं परन्तु कल आपने ऐसे ओजस्वी और तेजस्वी वाक्य उच्चारण किये कि हम भयभीत हो गये और यह प्रतीत हुआ कि न प्रति गुरु देव ने क्या आहार किया जिससे हृदय इतना तेजस्वी बन गया। मैं तो हर समय नम्रता से दृष्टिपात करता हूं परन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर अभी तक नहीं आया नित्य प्रति मानवत्व के सम्बन्ध में ऊंची से ऊंची वार्त्तायें प्रगट करते हैं। आज आपने राजा रावण के राष्ट्र की चचार्यें कीं परन्तु इसमें भी आपने यह कहा कि आधुनिक काल के इन राष्ट्रों की नामावली महानन्द जी से नहीं जानना चाहते परन्तु मै आपको ज्ञान कराये देता हूँ कि आधुनिक काल में उन राष्ट्रों को क्या कहते हैं और पुरातन काल में, रावण के राज्य में क्या कहलाते थे ?

बेटा ! क्या ? निर्णय करो।

भगवन् ! जिसको आपने अभी अभी पातालपुरी कहा था जहां रावण के पुत्र अहिरावण राज्य करते थे उसे आधुनिक काल में अमेरिका कहते हैं और जिसको आपने सौमभूस नाम से पुकारा, सौमकेतु राष्ट्र जो त्रेता काल में था उसे रूस कहते

हैं, जिसको आपने इन्द्रपुरी कहा और जिसको रावण के पुत्र ने विजय किया पुरातन काल में त्रिपुरी कहते थे और आधुनिक काल में उसका अपभ्रन्श होकर तिब्बत हो गया, जिसको आपने चिरंगित नाम का राष्ट्र निर्णय कराया उसे आधुनिक काल में चीन कहकर पुकारा जाता है तो भगवन्! यह मैंने आपसे आधुनिक काल के नामों का कुछ प्रतिपादन किया।

हास्य······धन्यवाद !

(महानन्द) तो भगवन्! मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि आप नम्र हैं, हर समय उदार रहते हैं और उदारता से मेरे प्रश्न का उत्तर दे दीजिये।

हास्य···सुनो। मुनिवरो! अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ वाक्य प्रारम्भ कर रहे थे जो बड़े महत्वदायक और उदारता के थे। इनके वाक्य आधुनिक काल के राष्ट्र सम्बन्धी थे इसके पश्चात् इनका एक प्रश्न है देवनागरी का, पुरातनकाल में केवल संस्कृत थी देवनागरी न थी, वह प्राकृतिक भाषा हमें वेदों में प्राप्त होती है, पुरातन काल में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक ऋषि मंडल सब ही संस्कृत का प्रतिपादन करता था, ऐसा इनका वचन है कि आधुनिक काल में कुछ समय से ही इस महान् देवनागरी का प्रचलन हुआ।

इस सम्बन्ध में मैं महानन्द जी से यह जानना चाहता हूँ कि हम यह मान लेते हैं कि पुरातन काल में और त्रेता में केवल संस्कृत थी, द्वापर काल में भी संस्कृत थी, सतोयुग काल में भी संस्कृत थी और महाभारत काल के पश्चात् यहां देवनागरी का प्रचलन हुआ परन्तु यह जानना चाहता हूँ कि जब परमात्मा की सृष्टि का चक्र चलता रहता है। कलीयुग बारम्बार आता रहता है, अभी और भी आता है और इससे पूर्व भी चला

यह देवनागरी कलोयुग में ही आती है या त्रेता काल में भी रहती है ?

(महानन्द) भगवन् ! यह हो सकता है कि इसी कलोयुग में प्रारम्भ हुई हो।

तो इसका अभिप्राय यह है बेटा ! कि आगे यह कलोयुग में है तो इसके पश्चात् सतोयुग आयेगा तो उसमें भी देवनागरी का प्रचलन रहेगा, त्रेता काल आयेगा उसमें भी प्रचलन रहेगा, द्वापर आयेगा उसमें भी प्रचलन रहेगा। यह वाक्य तो विस्तार का है इसे संक्षेप करो, जितना वाक्य संक्षेप किया जायेगा उतना ही सुन्दर है विस्तार में वाक्य लाने से न तुम्हें लाभ है और न हमें लाभ है।

(महानन्द) भगवन् ! आधुनिक काल का समाज यह कहता है कि पूर्व काल में सब ही संस्कृत उच्चारण करते थे, ऐसा हमें कुछ यहां संसार में प्राप्त भी होता है कि अब भी संस्कृत से मिलान होती हुई वाणियों का, देवनागरी का प्रचलन है और ऐसा है तो प्रतीत होता है कि पूर्व देवनागरी का प्रचलन नहीं था।

बेटा ! इसका उत्तर यह है कि जितनी भी संसार में वाणी होती है इन सब वाणियों का सम्बन्ध इस संस्कृत से होता है, वाणी कह लो, भाषा कह लो, जितने भी भाष्य होते हैं सब इस संस्कृत से सम्बन्धित होते हैं। बेटा ! यहां संसार में रावण भाष्य मिलता है, मुझे कुछ देखने का सौभाग्य भी मिला, रावण भाष्य में संस्कृत का प्रतिपादन किया मानों वह जो वेद की भाषा होती है, उसे कुछ हम प्राकृतिक भाषा कहते हैं जो पुरातन काल से ब्रह्मा के मुखारबिन्द से उत्पन्न होती है, ऋषियों को जो वह प्रेरणा आती है वह लिपि बद्ध उसी प्रकार

चली आती है, उसको बेटा ! इस प्राकृतिक रावण के पुत्र निचे की जो शृङ्खला होती है उस शृङ्खला को ह…र आधुनिक हैं, आगे चल करके बेटा ! ऋषि मुनि उसका सुन्दर…ने आपने कर देते हैं, ऐसा इसका संकलन हमारे यहां माना जाता है।

परन्तु रही यह चर्चायें कि इस प्राकृतिक वेद वाणी का रावण ने भाष्य किया, परम पिता परमात्मा की कृपा से मुझे रावण भाष्य को दृष्टिपात करने का सौभाग्य मिला, मैं गौरव के सहित कहा करता हूँ कि रावण ने इसका भाष्य किया, आगे चल करके यहां संस्कृत लिपिबद्ध मानी जाती है, लिपिबद्ध यह किसी काल में किसी तरह होती है। अब आगे रही यह वार्त्ता कि बेटा ! पुरातन काल से संसार में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के मनुष्य चले आ रहे हैं, पुरातन काल में बेटा ! ऐसा था कि जो मनुष्य संस्कृत उच्चारण नहीं कर सकता था, विद्या में इतना पारंगत नहीं था वह देवनागरी का प्रयोग करता था।

अब यह वाक्य उत्पन्न होता है कि जब केवल एक ही भाषा थी तो देवनागरी उस अज्ञानी मनुष्य के द्वारा कहां से आई क्योंकि किसी संस्कृत परिवार में पालन करने पोषण होने वाले बालक के द्वारा संस्कृत ही आती है, जब उसके द्वारा और भाषा का चलन नहीं आता तो और भाषा किस प्रकार उच्चारण कर सकता है ?

हमारे यहां परम्परा से देखो यह यह माना जाता है कि प्रत्येक भाषायें अंकुर रूप से रहती हैं, रही यह वार्त्ता कि किसी काल में बेटा ! बुद्धिमान् अधिक होते हैं, ऋषि मुनियों का प्रसार होता है, संस्कृत का प्रभाव हो जाता हैं परन्तु वह जो देवनागरी भाषा है वह भी अंकुर रूपों से रहती है, यदि अंकुर रूप से कोई वाणी न रहे तो संसार में कोई व्यक्ति ऐसा उत्पन्न

उच्चारण करो कि आप ा ! इस प्राकृतिक रावण के पुत्र करते हैं तो इसका उत्तर यह है इस श्रृङ्खला को हौर आधुनिक परमात्मा की अनुपम कृपा से गुरुओं उसका सुन्दर आपने संस्कृत को जाना था, जाना तो नहीं था परन्तु जाता है। अभ्यास था परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरु देव ने एक वाक्य कहा था कि जैसा चरण होगा, जैसा समाज होगा और जैसा प्रबन्ध होगा अन्तररिक्ष में वाक्य रमण करते हैं वही वाक्य वाणी द्वारा अंकित हो करके प्रारम्भ होने लगते हैं परन्तु यह योगिक वाक्य है और द्वितीय वाक्य यह है कि जो बेटा! संसार में आत्मा के तत्व को जान लेता है तो निश्चित है कि वह संसार में क्या नहीं जानता। बेटा! तुम्हारे प्रश्न के नाना उत्तर हो सकते हैं परन्तु मैं इसका विस्तार नहीं देना चाहता, संक्षेप यह कि यह सब जितनी भाषायें होती हैं यह सब अंकुर रूपों से रहती हैं और इनका मिलान उच्च संस्कृत से होता है।

जैसे मुनिवरो! जब संसार में वाणी का विकास हुआ, मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी कहा करते हैं कि महर्षि पाणिनि ने इस विद्या का विकास किया महर्षि पाणिनि मुनि महाराज का व्याकरण माना जाता है परन्तु मैं यह कहा करता हूं कि माई कोई तो कहता है महर्षि पाणिनि व्यास मुनि के पश्चात् हुए, कोई कुछ कहता है परन्तु मैं यह कहा करता हूं कि महर्षि पाणिनि ने इस विद्या का विकास क्या किया उन्होंने व्याकरण को सुन्दर रूप में संकलन कर दिया परन्तु मैंने जो आचार्यों के चरणों में ओत प्रोत हो करके जो पान किया है वह यह है कि आदि ब्रह्मा के व्याकरण का विकास हुआ। आदि ब्रह्मा कौन थे जिनके द्वारा वेद का प्रतिपादन किया गया? वेदों का प्रतिपादन चारों ऋषियों द्वारा हुआ।

...त्मा का है परन्तु मैंने यह भी ...ार में आदि सृष्टि के गुरु भी माने ... काल से गुरु परम्परा मानी जाती है, ...थम ब्रह्मा ने संस्कृत व्याकरण को जाना और कैसे जाना ? योगाभ्यास के द्वारा। योगाभ्यास के द्वारा इस संस्कृत को कैसे जाना ?

मुनिवरो ! इस संस्कृत को इस प्रकार जाना कि आत्मा और इन पांचों प्राणों का मिलान किया और कैसे किया ? मुनिवरो ! इन पांच कर्म इन्द्रियों का, पांच ज्ञान इन्द्रियों का, पांच प्राण, मन और बुद्धि इन सबका एक संगठन किया, इसके पश्चात् यह प्राणों के आधीन हो गये और प्राण आत्मा के आधीन हो गया; आत्मा प्राणों के सहित अभ्यास करते करते मूलाधार में रमण कर गया और उसके पश्चात् यह आत्मा प्राणों सहित त्रिवेणी स्थान में जाता है; प्राणों का वहां संकलन रहता है, प्राणों की वहां प्रगति रहती है, उसमें एक चक्र चलता है और उस चक्र से एक बाजा बजता है जिसको साधारण वाणी में हमारे यहां अनहद बाजा कहते हैं, अनहद बाजे में नाना स्वर होते हैं, उन स्वरों में अक्षर होते हैं, उस आदि ब्रह्मा ने इन सबका अनुभव किया आत्मा का संकलन करके, अपनी स्थिति में ले गये और स्वरों को जाना, जिसको अनहद बाजा कहते हैं उसमें भिन्न भिन्न प्रकार के अक्षरों के स्वर थे उन स्वरों को जाना, बेटा ! अक्षरों का बोध हुआ, उन अक्षरों से व्याकरण बना संसार का।

मेरे प्यारे महानन्द जी कहा करते हैं कि महर्षि पाणिनि ने व्याकरण निकाला और किस प्रकार निकाला कि महाराजा शिव और पार्वती दोनों के नृत्य से—महाराजा शिव ने डमरू बजाया

[illegible] ! हम प्राकृतिक रावण के पुत्र
और पार्वती ने गान गाया, उस [illegible] इस शृङ्खला को ह[illegible]र आधुनिक
हुई उससे महर्षि पाणिनि के व्याकर[illegible] उसका सुन्दर[illegible] आपने
महर्षि का वाक्य भी यथार्थ है परन्तु संसार [illegible] जाता है।
जाना नहीं, हमारे यहां महर्षि पाणिनि भी हुए हैं परन्तु [illegible]
का बोध आज नहीं सृष्टि के आदि में व्याकरण और अक्षरों का बोध हुआ, इसको लगभग १ अरब ६६ करोड़ २८ लाख ४६ हजार और ६४ वां वर्ष चल रहा है जब ब्रह्मा ने इस अनहद बाजे और स्वरों को जाना था, सृष्टि के प्रारम्भ हुए तो अधिक समय हो गया परन्तु जब इस विद्या का विकास हुआ इस संसार में निर्णय कराया।

मुनिवरो ! प्रकरण चल रहा था कि महर्षि पाणिनि नाम के ऋषि हुए और वह काल महाभारत से कुछ पूर्व का काल माना जाता है, कोई उनका काल पश्चात् का मानते हैं परन्तु कोई यह कहता है कि सृष्टि के आदि से वेद एक ही चला आ रहा था फिर व्यास जी हुए उन्होंने इसके चार भाग बना दिये इसलिये उनका नाम वेद्व्यास पड़ा परन्तु यह वाक्य न मानने वाला है क्योंकि वेद्व्यास के नाम के अनन्त ऋषि होते रहते हैं इसमें क्या है पांडवों के पुरोहित का नाम भी वेद व्यास था, जिन्होंने वेदान्त दर्शन का निर्माण किया, राजा रघु के काल में वेदव्य व्यास हुए, सत्तोयुग काल में महीन नाम के राजा के पुरोहित भी व्यास हुए परन्तु मुझे यह वाक्य अधिक विस्तार वाला नहीं बनाना है परन्तु मुझे केवल यह प्रगट करना है कि देखो शिव ने डमरू बजाया और पार्वती ने गान गाया था, उस डमरू से जो ध्वनि उत्पन्न हुई उससे व्याकरण की उत्पत्ति हुई परन्तु इस वाक्य को बहुत गम्भीरता में ले जाओ: